पंचम अध्याय

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के मिथक नाटकों में रंगमंचीयता

पंचम अध्याय

डॉ. लाल के मिथक नाटकों में रंगमंचीयता

आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच :

भारतीय परंपरा में नाटक का निर्माण अनादि काल से ही माना गया है। जैसे मनुष्य आदि मानव की स्थिति छोड़कर कुटुंब संस्था बनाकर रहने लगा। खेती-व्यापार करने लगा। उसी काल से उसके मन में नाटक की कल्पना थी। आदि मानव शिकार कर के उसका वर्णन साथियों को बता सकता था, कभी कभी बढ़ा चढ़ाकर कल्पना द्वारा भी यह बयान किया जाता था। इसप्रकार सही नाटकों का उद्गम कथनशैलीद्वारा माना जाना चाहिये। कुटुंबावस्था में ये लोक रामलीला, रासलीला जैसे प्रकार खुले मैदान में खेलने लगे। तब तक पर्दा, ध्वनि, प्रकाश, रंगमंच जैसे चीजों की कल्पना उनके मन में नहीं उभरी थी। धीरे-धीरे परिस्थिति नुसार व्यक्ति बदल गया और रंगमंच में भी परिवर्तन आ गये।

आधुनिक हिंदी साहित्य के युग का प्रारंभ भारतेंदु से माना जाता है। भारतेंदु ने हिंदी साहित्य को अनुपम रचनाओं का सृजन करके अनुपम देन दी है। उस समय रंगमंच का अभाव था। नाटक प्रस्तुत करने का उद्देश्य था सामाजिक तथा राजनैतिक तत्कालिन समस्याओं का उद्घाटन। जन-सामान्य के मन में राष्ट्रीय प्रेम, सामाजिक समस्या के प्रति सजगता जगाना यह भी उद्देश्य था। भारतेंदु ने अपने नाटकों में सामाजिक प्रश्न उठाये थे। नाटकों द्वारा धार्मिक विडम्बना को भी रोकने का प्रयास करके मिथ्याचार को भी रोक लगाने का प्रयास किया। लोकधर्मी चेतना को जगाकर लोकरूढ़ि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करके रंगमंच को परिचालित किया। आधुनिक हिंदी नाटकों द्वारा जीवन के आदर्श के साथ यथार्थता को प्रस्तुत किया गया। कल्पना और रंजन की जगह जीवन को सही अर्थों में

प्रस्तुत करना ही रचनाकार का उद्देश्य था। नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत करते समय केवल रचनाकार सामने नही आता तो उसके साथ-साथ रंगमंचपर प्रस्तुती भी देखी जाति है। नाटक की कथावस्तु के साथ-साथ रँगसंकेत, ध्वनिसंकेत, प्रकाशयोजना, दृश्यबंध आदि कई बातों पर ध्यान देना पड़ता है। रंगमंच नाटक प्रस्तुति का माध्यम है। रंगमंच की स्पष्ट परिकल्पना के अभाव में लिखे गये नाटक प्रस्तुति योग्य नहीं होते। नाटक भाषा में लिखा जाने पर भी दृश्यों द्वारा ही रंगमंचपर प्रस्तुत करना पड़ता है। भाषा तथा कथोपकथन एक डोर से बाँधे रहते हैं। भाषा गहरे भावों का वहन करने में समर्थ होनी चाहिए तभी कथोपकथन प्रभावात्मक रहेगा। रंगमंच पर भी काफी मेहनत करके निर्देशक अच्छा नाटक प्रस्तुत कर सकता है।

नाटक केवल आर्थिक समस्या के लिये लिखे जाये यह तो साहित्य सृजन नही हो सकता। नाटकों में जीवन्तता तभी आयेगी जब वह साहित्य के लिए लिखा जाये। दर्शकों के दृष्टि से उनके भाव-भंगिमा को जगानेवाले नाटक ही उच्च कोटी के हो सकते हैं। परंतु आधुनिक रंगमंच का स्वरूप पश्चिम के हैमलेट जैसे युग के प्रतिफल है। आज के युग में साधन संपन्नता तथा कला रूचि है। आज हमें सौंदर्यबोध के मापदंड मालूम है। और इसी के फलस्वरूप आज का रंगमंच भी अत्याधुनिक साधनों से परिपूर्ण है। पर नाटक के आत्मा की पहचान काश इन सुविधाओं से पूरी हो सकती । नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिये जितने साधन एवं उपादान उपलब्ध है सभी का सहयोग अनिवार्य है। वैदिक काल के रंगमंच भी थे जिनका उल्लेख नाट्य-शास्त्र में पाया जाता है। युगपरिवर्तन के साथ रंगमंच में भी तबदिली आ गयी है। शुरूआत में चतुरस्त्र त्र्यस्त्र तथा विकृष्ट ऐसे नामों से रंगमंच को अभिहृत किया जाता था। फिर रंगमंच में बदलाव आ गये। रंगमंच पर दृश्यबंध प्रस्तुत होने लगे। और घुमन्तु रंगमंच तब परिवर्तत हो गया। मराठी के नाटकों में रंगमंच में काफी सुधार आ गया है। जो दृश्य रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कठिनाई महसूस होती थी ऐसे दृश्य भी अब मराठी नाटकों में प्रस्तुत किये जाते हैं। इसप्रकार आधुनिक रंगमंच में काफी सुधार आ गया है।

रंगमंच का महत्व :

हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटक भी एक साहित्यिक विधा है, जिसे दृश्यकाव्य भी कहा जा सकता है। पुराण काल के सभी नाटक गेय, मुक्तक, छांदोग्य अथवा पद्यरूप में ही लिखे गये थे। परंतु आधुनिक काल में ही नाटकों का निर्माण गद्यशैली में हुआ है। विद्वानों ने तो

इसे दृश्यविधान मतलब देखने योग्य ही संज्ञा से अभिहृत किया है। यह दृश्य किसी उच्च स्थान पर से देखा ज सकता है। ताकि एक से ज्यादा लोग भी बड़ी आसानी से देख सके। जहाँ पर नाटक प्रस्तुत होता है केवल उसी जगह को रंगमंच कहा जाता है, परंतु जहाँ प्रेक्षक गण बैठकर नाटक को देखते हैं वह स्थान भी रंगमंच के अंतर्गत ही आता है। रंगमंच को रंगशाला, रंगभवन, रंगपीठ आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। रंगमंच दो भागों में विभाजित किया जाता है -

1) रंगभूमि - यहाँ अभिनेता गण अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं।

2) रंगपोठ - यहाँ से दर्शक नाटक का रसास्वादन करते हैं। रंगभूमि को अंग्रेजी में स्टेज कहते हैं तो रंगपीठ को थिएटर।

नाटक एक सृजनात्मक कला है जिसका अभिनयद्वारा सृजन होता है। नाटक प्रस्तुती का माध्यम ही रंगमंच है, और इसीलिये नाटक के लिये रंगमंच एक अनिवार्य तत्व है। रंगमंच का महत्व भी नाटक के लिये अनिवार्य है। नाटक का महत्व रंगमंच पर प्रस्तुति के बाद ही बढ़ता है। नाटक का नाम लेते ही हमारे सामने सुसज्जित रंगशीर्ष, अभिनेतागण, लयबद्ध संगीत, दर्शकों से खचाखच भरा रंगपीठ आदि बातें आती है। नाटक और रंगमंच एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। रंगमंच के बिना नाटक अधूरा रहेगा तो नाटक के बिना रंगमंच सुना। नाटक के लिये सजीव पात्रों और मुखद्वाणी के साथ-साथ उसका संयोजन भी महत्वपूर्ण है। नाटक का मंचीकरण करते समय रंगसज्जा, वेश-भूषा, ध्वनि, प्रकाश, रंगसंकेत, दृश्यबदल आदि बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। रंगमंच का जादू सजीव अभिनेता की जीवन्त स्पंदनशील उपस्थिति का ही जादू है। नाटक समाज का प्रतिनिधित्व करता है, अभिनेता अपने अभिनय के माध्यम से उसे रूपायित करता है। सत्याभास तथा असत्याभास का समन्वय रंगमंच पर प्रस्तुत करके निर्देशक अपनी कलाप्रदर्शन करता है। रंगमंच की मूल प्रकृति के बारे में स्वयं डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के विचार मननीय है।

" अपने प्रत्यक्ष अर्थों में रंगमंच किसी विषय वस्तु को अभिनयद्वारा प्रदर्शन करने की कला है। इसके लिये इसे न किसी विशेष रंगभवन की आवश्यकता है, न मंच की, न किसी रंगशिल्प की। क्योंकि रंगमंच की प्रतिष्ठा, उसकी रचना, इसका प्रयोग कही भी किसी भूमि-खण्ड पर हो सकता है। वस्तुतः यही रंगमंच की मूलप्रकृति है। "[2]

उपर्युक्त कथन में रंगमंच से ज्यादा महत्व अभिनय को दिया गया है। रंगमंच के लिये अभिनय ही महत्वपूर्ण माना गया है। भारतीय परम्परागत रंगमंच संगीत और नृत्य प्रधान रहा है। नृत्य

कला को आदर्श कला माना गया है। रंगमंच का संबंध मानवीय भावनाओं के साथ जुड़ा रहता है इसलिये इसे व्यवसायी नहीं बनाना चाहिये। रंगमंच एकाधिक स्तरोंपर सामुदायिक विधा है, इसलिये रंगमंच केवल अर्थोपार्जन का साधन मात्र नही वरन् कलाकार, निर्देशक दर्शक तथा रचनाकार का भावविश्व भी है। कभी कभी नाटक का गहरा असर कलाकारों के जीवनपर भी पड़ता है। नाटक प्रस्तुतीकरण के समय में अभिनेता तथा दर्शकों की अनुभूति भौतिक धरातलपर एक ही होती है। अभिनेता अपनी कलाद्वारा रचनाकार के उद्दिष्ट को साकार करता है। इस में सहायता मिलती है रंगसंकेतों की कथोपकथा का तथा अभिनय की। रंगमंच तो एक अनुभूति है जो रचनाकार, अभिनेताद्वारा व्यंजित करता है। रंगमंच को आंतरिक पक्ष तथा व्यावहारिक पक्ष में बांध जा सकता है। दर्शकों का आंतरिक पक्ष से सम्बन्ध है तो रंगमंचद्वारा अर्जित सम्पत्ति तथा नाम व्यावहारिक पक्ष है।

भरतमूनि के अनुसार वस्तु, नेता, रस ही नाटक के तत्व है, इन सभी बातों को रंगमंचद्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक का मूलहेतू ही रसास्वादन है। रसास्वादन से साधारणीकरण की स्थिति प्राप्त होती है। ये सारी बातें रंगमंच से निगड़ीत है। दर्शक जब भौतिक रूप में अपने आप को खोकर अभिनेता के रूप में अपने आप को पाता है तभी रंगमंच का उद्दिष्ट सफल हो जाता है। दर्शक को भावनिक धरातल पर रंगमंच से अलग नहीं किया जा सकता। सहृदय का संबंध रंगमंच से जन्म जन्मांतर का रहता है। नाटक से रस निष्पत्ति होते समय दर्शक अभिनेता से तादात्म्य स्थापित करता है। नाटक का माध्यम तो रंगमंच है, दर्शकों को भी रंगमंच द्वारा रसास्वादन होता है। अभिनेता की अनुभूति ही रसास्वादन, मनोरंजन कराती है। इन सभी बातों के लिये रंगमंच एक आवश्यक साधन है।

भारतीय और पाश्चात्य रंगमंच :

वैदिक काल से भारतीय रंगमंच विद्यमान है यह हमने देखा है। भारतीय इतिहास के परिवर्तन के साथ साथ ही रंगमंच में भी परिवर्तन हो गया। भारतीय रंगमंच नृत्य प्रधान है। उस समय भारतपर परकीय आक्रमण होते रहें और रंगमंच पर पाश्चात्य प्रभाव दिखायी देने लगा। संस्कृत नाटक रंगमंचीय थे। नाट्य प्रदर्शन का प्रारंभ देवासुर संग्राम में असुर और दानवों की पराजय के पश्चात् महेंद्र विजयोत्सव में हुआ। बाद में बौद्ध काल में भी नाटक खेले गये। संस्कृत नाटकों में कालिदास, भास वगैरे के नाटक खेले गये जिनमें काव्य, आदर्श जीवन का प्राधान्य था। मध्यकाल में भक्तिमार्ग का

प्राधान्य रहा था इसलिए इस काल के नाटक भक्तिपर आधारित रहे।

आधुनिक युग मे रंगमंचपर सामाजिक समस्या, राजकीय समस्या को यथार्थ रुप मे प्रस्तुत किया गया। कुछ विद्वानोंका कथन है कि आधुनिक काल मे नाटक अभिनेय नही हैं परंतु यह बात सच नही है। आधुनिक काल मे रंगमंच मे सुधार आ गया है। पर्दा उठाना, गिराना, संगीत, प्रकाश, ध्वनि, रंगसंकेत, निर्देशन आदि बातोंमें भी काफी सुधार आ गया है। कुछ नगरोंमें नाटक के प्रदर्शन की स्थिति यह है कि अभाषि नाटक प्रदर्शित नही किये जाते। हिंदी रंगमंच राजधानियों या बम्बई, कलकत्ता जैसे शहरों के चकाचौंध से हटकर जनसामान्य तक अपना गहरा रिश्ता बनानेमें नाकामयाब रहा।

पाश्चात्य रंगमंच का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम यूनान मे हुआ, इसका कारण युनानियोंकी प्रकृतिमें अपार श्रध्दा। उनकी सबसे अधिक श्रध्दा उनकी देवी शक्ति 'डायोनिसस' पर है। डायोनिसस की रंगमंच पूजानिमित्त ही रंगमंच का श्रीगणेशा हुआ। उनका रंगमंच भी इसी नाम से जाना जाने लगा। जैसे - 'थिएटर ऑफ डायोनिसस'। पाश्चिमात्योंने नाटक को ड्रामा नाम से अभिहृत किया। अरस्तू ने इसे काव्य का प्रमुख भेद माना है। काव्य मे काव्य तथा काव्यव्यापार दोनो का अंतर्भाव रहता है। अरस्तू ने उसे अनुकरण मात्र कहा। अनुकरण का मंतव्य है अनुभूति का पुन: सृजन, यह अनुकरण जहाँ प्रस्तुत किया जाता है, वह स्थान ही रंगमंच की कल्पना मे सामने आया, उन्होंने रंगमंच को थिएटर का पर्यायवाची शब्द माना। पश्चिममें सुखान्त की अपेक्षा दु:खान्त की ज्यादा चर्चा की गयी। उन्होने सुखान्त को कॉमेडी तथा दु:खान्त को ट्रेजडी कहा। रोमन लोग तो ट्रेजडी की अपेक्ष कॉमेडी पसंद करते है।

ट्रेजडी जीवनगत मूल्योंकी परीक्षा करती है तो कॉमेडी जीवनआदर्श बनाकर आनंद तथा मनोरंजन कराती है। ट्रेजडी में भय और दया की निष्पत्ति होती है तो कॉमेडी से दु:ख का परिमार्जन करके स्वतंत्र जीवन की राह दिखाती है। पाश्चात्य रंगप्रणाली मे एक नयी प्राणशक्ति और भावना थी। युनानी नाटक अतल भावनात्मक गहरे थे और उत्कृष्ट काव्य के रूपमें प्रस्तुत किये जाते थे। युनानी रंगशाला एक महानरूप तथा सरल और आकर्षक स्थान था। चिनी नाटयशाला भी स्वयं एक विशेषाकार रंगमंच है, इसमें दर्शकों के लिए बैठने का विशिष्ट स्थान था। चिनी रंगशालाएँ भी बड़े नगरोंमें विराट रूप में हैं, पर वे अस्थायी रूप में हैं। आजतक चिनी में कोई प्रभावशाली एवं महान काव्य/नाटक नही बन पाया। चिनी लोग रंगमंच के लिए जिन साधनोंका उपयोग करते हैं वे कल्पनात्मक एवं रूढ़िवादी होते है।

जापान में आज भी कुलिनता तथा अकुलीनता के आधारपर दो प्रकार की रंगशालाएँ हैं। उच्चवर्ग के लिये बौध्दिक नाट्य साहित्य तथा जनसाधारण के लिये स्वतंत्रतापूर्ण नाटकों का निर्माण हुआ। रंगमंचकी सुनियोजित सजावट जापान की आत्मा है। जापनी रंगमंच आयाताकार होता है तथा छत मंदिरोंकी तरह होता है। पिछे देवदारु वृक्ष का परंपरागत प्रतिक रहता है। दृश्य उपस्थित न करके भी जापानी रंगमंच सजा हुआ रहता है। पंखी एक सर्व स्वीकृत प्रतीक माना गया है। यह पंखी अनेक बातोंका संकेत देता है, जैसे नर्तकी की नृत्यगति इसी पंखी के जरिये समझी जा सकती है। परंतु आज यह रंगमंच भी समय के साथ बदल गया है। बीसवी शती के प्रारंभ में पाश्चात्य रंगमंच में बदलाव-सा आ गया है। आज रंगमंच पर यथार्थवाद प्रस्तुत किया जाता है। रंगमंच पर लोकरूचि तथा साहित्यरूचि को प्राधान्य मिल रहा है। पाश्चात्य में समाजवाद का बोलबाला हो रहा है। जर्मनीके विश्वमहायुध्द के पहले ही लोकतांत्रिक रंगशाला की स्थापना हो चुकी थी। अमरिका जैसे आधुनिक नगरोंमें अभिनेताओं के संघ स्थाप्ति होने लगे थे। पाश्चिमी रंगमंच पर निर्देशक एक नया तत्व माना जाने लगा था। आधुनिक पश्चिमी रंगमंच का विकास निर्देशक के माध्यम से होने लगा था। कलात्मक अभिव्यक्ति निर्देशक विशेष रूप से प्रस्तुत करते थे। इसलिये निर्देशक एक उपयुक्त साधन सिध्द हो गया।

पश्चिमी नाटकोंके प्रदर्शन हमारे सामाजिक जीवन और रंगमंच पर गहरा पश्चिमी प्रभाव छोडते है। इसका कारण है भारतीय भाषाओंके नाटक साहित्यिक क्षीणता और नाटकोंकी कमी। पश्चिमी नाटकों के संकेत हमारे रंगमंच से जुड़े होने के कारण ही प्रदर्शन में सुलभता लाते है। रंगमंच स्वभाव से ही एक सामुदायिक क्रिया है जो दर्शक और सर्जक की गहराई में जाकर गहरा अनुभव संप्रेषित करते है। अंग्रेजी प्रदर्शन चाहे जितने कलात्मक और प्रेरणादायी रहे हो - भारतीय रंगमंचीय कार्यकलाप का एक अत्यंत ही सीमित, कृत्रिम और अवास्तव पक्ष के रूप में हमारे सामने आते है। पारसी रंगमंच अपनी आंतरिक कृत्रिमता, जड़ता और विसंगतियों के कारण धीरे-धीरे नष्ट हो गया। इसका प्रमुख कारण यह है कि पारसी रंगमंच हिंदी क्षेत्र में मूलतः अजनबी, बाहरी तथा विजातीय था। फिर भी पारसी रंगमंचने हिंदी रंगमंच के विकास और स्वरूप पर बड़ी बुनियादी छाप छोड़ी है। पारसी रंगमंच कभी कभी संगीत प्रधान रहता था। पारसी रंगमंच का नायक गायक होनेपर भी नृत्यकला का ज्ञान अवश्य रखता था। परंतु पारसी रंगमंच पर अभिनय अतिनाटकीय होता था।

भारतीय परंपरागत रंगमंच संगीत और नृत्यप्रधान रहा है। आधुनिक रंगमंच पश्चिमी तथा

भारतीय सुधार रूप में होकर भी संस्कृत की मान्यता नही पा सकता। पश्चिमी नाटकोंका बांगला भाषा में भाषांतर हो चुका है। भारतेंदु कालमें ही पारसी कंपनियों के नाटक को व्यावसायिक रूप मिल गया था, इसी व्यावसायिक रूप के कारण पारसी रंगमंच की आयु पचास वर्षोंसे ज्यादा नही टिक सकी।

हिंदी रंगमंच को उजागर करनेवाले नाटककारोंमें डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ आलोचकों के विचार - दृष्टव्य है -

"'सूर्यमुख' के नाटक अथवा इसके रंगमंचमें कई महत्वपूर्ण बाते है। इसका रंगमंच इसके भीतर व्याप्त है। इसके नाट्य की प्रकृति भारतीय परंपरा से है। यह अपनी ही रंग-मिट्टी से उपजा है। इसकी भाषा इसका संगीत तत्व, इसमें व्याप्त अभिनय तत्व और इसका परम व्यावहारिक नाट्य रूपबंध सब लाल की अपनी सृजनात्मक उपलब्धि है। यही शुध्द भारतोय नाटक परंपरा का आधुनिक प्रयोग है।"[3]

डॉ. लाल ने अपने नाटक में विविध रंगमंचीयता अपनाई है जैसे -

"कलंकी' ने अपने प्रस्तुत रंगमंच की जैसे स्वयं रचना की है। इसने अपने इस स्वरूप को स्वयं ढूंढ़ा है। यह स्वरूप ऐसा है, जो अपने प्रति भी प्रश्न-चिन्ह लगाता है और दूसरों को विचलित, नाराज तथा हतप्रभ करता है। इसके नाट्य-विधान में साहित्य और रंगमंच दोनो ही प्रगतियाँ एक नये स्वरूप में एकिकृत है। वह भी प्राचीन और नयी प्रणाली थी।'[4]

डॉ. लाल को भारतीय रंगमंच की कमिया मालूम थी। नाटक समाज से कटतासा लगता था इसलिए उनके बारे में श्रीकांतजी कहते हैं -

"हिंदुस्तानी रंगमंच की पिछले कुछ वर्षोंसे सबसे बड़ी घटना है यह एहसास कि नाटक अपने समाज से प्रश्न करने का सबसे सार्थक और सशक्त माध्यम है।"[5]

इस प्रकार रंगमंच का अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने के लिए रचनाकार, अभिनेता, निर्देशक तथा दर्शक सभी का सहयोग अनिवार्य है।

दृष्यबंध अथवा दृश्ययोजना -

डॉ. लाल के मिथक नाटक तथा उसके दृश्यबंध के बारे में चर्चा करते समय उन्होंने मिथक नाटकों की रचना महाभारतकाल, पुराणकाल, तांत्रिककाल तथा पुराणभासित नाटक लिखे यह देखना उचित रहेगा।

SAHR. BAL... LIBRARY

महाभारत काल - सूर्यमुख, यक्षप्रश्न, उत्तरयुध्द।

पुराण काल - नरसिंह कथा,

तंत्रकाल - कलंकी,

पुराणाभासित नाटक - मिस्टर अभिमन्यु तथा एक सत्य हरिश्चंद्र।

सूर्यमुख

इस नाटक का दृश्यबंध क्रमवार इस प्रकार है - भूमिका में पहले भिखारी दिखाई देते है - जो आपस में बाते करते है। उनकी बाते द्वारिका के राजसिंहासन के बारे में राजदशा के संदर्भ में हो रही है। परंतु अंक का **पहला दृश्य** - द्वारिका का राजदुर्ग और समय संध्या का है। दुर्ग के मैदान के इधर-उधर कुछ भिखारी बाते करते बैठे हैं। बीच में पतोला गाता है। कुछ देर बाद भिखारी हसते है। राजमहल से पूजा समाप्त होने की सूचना पाकर भिखारी भिक्षा पाने की लालच में आपसी बहस करते है। दुर्गपाल भिखारियों को दान देता है पर भिखारी झपटाझपटी में दानपात्र गिरा देते है। फिर रूक्मिणी आती है तो भिखारी उसके हाथ से दान लेना अस्वीकार करते है।

'विदुरथ - महारानी रूक्मिनी, हअ प्रद्युम्न जननी .. जा जा नाही लेतो तेरे हाथ कूं दान।

दुर्गपाल - क्या कहा?

अंधू - अधर्मो के माई के हाथ को दान ... छी छी छी।'[8]

इतना कहकर सब भिखारी चले जाते है। रूक्मिनी अपने आप को समझाकर राजकोश से दान देने की आज्ञा देती है। पृष्ठभूमि से शोर सुनाई पड़ता है। जरा को साम्ब ले आता है, कोलाहल नजदीक आता है। पात्रों के हावभाव का वर्णन बीच-बीच में किया गया है। दीर्घवार्तालाप के बाद फिर से शोर सुनाई पड़ता है। दुर्गपाल के संभाषण के साथ ही पहला दृश्य समाप्त होता है।

दूसरा दृश्य - नागकुण्ड की पहाडी का है। समय रात का दूसरा पहर। दो सैनिक आपस में वार्तालाप करके पहरा दे रहे हैं। व्यासपुत्र आता है तो उसे छेडते है, प्रद्युम्न व्यासपुत्र को मिलकर वार्तालाप करता है। व्यासपुत्र चले जाने के बाद वेनुरती संगीकर के साथ प्रवेश करके प्रद्युम्न से बातचीत करती है। प्रद्युम्न संगीकर तथा वेनुरती के साथ बहस करता है। प्रद्युम्न वेनुरती के साथ द्वारिका चला जाता है। सैनिकों के चर्चा के साथ दूसरा दृश्य समाप्त।

तिसरा दृश्य राजदुर्गपर घटित होता है। समय संध्या का भिखारी गाते है, व्यासपुत्र

आनेपर सभी चुप हो जाते है। व्यासपुत्र प्रद्युम्न के विरूध्द लोगों को भड़काता है। भिखारी व्यासपुत्र को हसी मजाक में टालते है। बभ्रु जरा को बंदी बनाकर लाता है। जरा की चेष्टाओं का वर्णन। - बीच-बीचमें वार्तालाप। फिर व्यासपुत्र आकर जरा को भडकाकर चला जाता है। प्रद्युम्न जरा से बातचीत करने का प्रयास करता है। वह गीत गाता है। रूक्मिनी को भी रंगमंचपर प्रस्तुत किया है। प्रद्युम्न तथा रूक्मिनी का वार्तालाप - वेनुरती के आगमन पर रूक्मिनी चली जाती है। प्रद्युम्न वेनुरती के प्यारभरे वार्तालाप। तथा दोनों का प्रस्थान। परिचारिका तथा सैनिकों का वार्तालाप। दिर्घ वार्तालाप के बाद प्रद्युम्न रंगमंचपर फिरसे उपस्थित, संगीकर तथा दुर्गपाल से वार्तालाप। वेनुरती का प्रवेश फिर वार्तालाप। जरा का आगमन और फिर सिढ़ियोंपर सो जाना। प्रद्युम्न अपने आप से बोलता है। पृष्ठभूमि में समुद्र के गरजने की आवाज तथा सावधान-सावधान के स्वर गूँजते है और दृश्य समाप्त होता है।

दूसरे अंक का पहला दृश्य वेनुरती के कक्ष से लिया गया है। समय है रात्री का पहला प्रहर। वेनुरती शृंगार करती है। परिचारिकाओं के साथ वार्तालाप। दिर्घ वार्तालाप के बाद पृष्ठभूमि से दुर्गपाल का स्वर। परिचारिकाओं के चले जाने पर वेनुरती के कृष्ण की झलक दर्पन में होती है तो वह चीखती है। परिचारिका दर्पण को हटाती है। प्रद्युम्न का प्रवेश दोनो के वार्तालाप के साथ पहला दृश्य समाप्त होता है। दूसरा दृश्य दुर्ग का मैदान, समय रात का दूसरा पहर। बभ्रु तथा सैनिकोंमें वार्तालाप। आपसी चेष्टाऍं करते है। वेनुरती साम्ब से वार्तालाप करती है, गिरने लगती है साम्ब उसे सम्हालता है तो प्रद्युम्न प्रकट होता है। प्रद्युम्न तथा वेनुरती का झगड़ा इसी में दृश्य समाप्त होता है। तिसरा दृश्य दुर्गपर ही घटित होता है समय रात का। भिखारी लोग अर्जुन का पीछा करते है। दुर्गपाल तथा अर्जुन का वार्तालाप। रूक्मिनी का प्रवेश भिखारिओं का बडबडाना वार्तालाप- वेनुरती का प्रवेश। रूक्मिनी तथा वेनुरती का वार्तालाप। तथा झगड़ा रूक्मिनी चली जाती है। अर्जुन भी अंत:पुर में चला जाता है। वेनुरती अर्जुन के साथ जाने में अनाकानी करती है। यदुवंशी बभ्रु तथा अर्जुन का वार्तालाप। सभी अर्जुन को चिढ़ाते है। वेनुरती का प्रवेश रूक्मिनी वेनुरती का वार्तालाप, रूक्मिनी का प्रस्थान। वार्तालाप - लम्बे वार्तालाप के बाद प्रद्युम्न संगीकर को मार डालकर उसे प्रणाम करता है। फिर युध्द के लिये चला जाता है। वेनुरती प्रद्युम्न के बारे में दुर्गपाल को पूछती है तो दुर्गपाल उसे अंत:पुर में भेजता है। दुर्गपाल भी चला जाता है। जरा तथा व्यासपुत्र का वार्तालाप के साथ ही दृश्य समाप्त होता है।

चौथा दृश्य दुर्ग के भागपर दृश्यित है समय संध्या का। मंचपर अर्जुन तथा दुर्गपाल का वार्तालाप। रूक्मिनी का भी वार्तालाप। रूक्मिनी तथा अर्जुन चले जाते है तो सैनिकों के वार्तालाप तथा विचित्र हावभाव। फिर सब चले जाते है। पृष्ठभूमि में युध्द चल रहा है। कुछ क्षणों बाद श्वेत वस्त्रोंमें अर्जुन के साथ यदुकुल की स्त्रियाँ करूण स्वर में गाती है और चलने लगती है। सबकी यात्रा के चलते चलते ही दृश्य समाप्त होता है। पाचवा दृश्य दुर्ग स्थान समय पिछले दृश्य के आगे। प्रद्युम्न राजमुगुट धारण किये हुअे यदुवंशीयों के साथ आता है। दुर्गपाल तथा वेनुरती को पुकारता है परंतु महल सुना है। व्यासपुत्र आकर वार्तालाप करता है। प्रद्युम्न राजमुकुट नीचे रखकर चला जाता है। यदुवंशी भी चले जाते है। दुर्गपाल आता है, दुर्गपाल व्यासपुत्र को डांटता है, व्यासपुत्र चला जाता है परंतु जरा आकर दुर्गपाल को मार डालता है, इसी के साथ दृश्य तथा अंक दूसरा समाप्त होता है।

चौथा अंक - यदुकुल की स्त्रियाँ राह चलती है, कुछ गाती है, थककर रूक जाती है, वही पर विश्राम करते है। वेनुरती रूक्मिनी तथा अर्जुन का वार्तालाप। व्यासपुत्र आकर द्वारिका समाप्त होने की सूचना देता है। साम्ब आकर व्यासपुत्र के काले कारनामे बताता है। साम्ब व्यासपुत्र को मार डालता है। तथा बभ्रु आक्रमण करने के लिए प्रद्युम्न को मारने के लिए आ रहा है, ऐसा बताता है। प्रद्युम्न आकर वेनुरती को कोसता है परंतु वार्तालाप के दरम्यान दोनों में प्यारभरी बाते होती है। बभ्रु आक्रमण करने आता है। बभ्रु तथा प्रद्युम्न के वार्तालाप, फिर युध्द वेनुरती भी युध्द करती है। वेनुरती घायल होती है, प्रद्युम्न भी घायल, दोनो एक दूसरे अंक में सोकर मर जाते है। आहुकी की शिशु को रूक्मिनी द्वारिका ले जाती है, नाटक की समाप्ती।

यक्षप्रश्न और उत्तरयुध्द

'यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुध्द' दो लघु नाटक है उनके दृश्यबंध इस प्रकार -

यक्षप्रश्न

चौकोर भूमि और उसके चारों ओर अथाह जल। भूमि की एक पतली-सी पट्टी बाहर से उस चौकोर भूमि पर ले जाती है। परदा उठतेही बाहरसे सहदेव पानी पिने के लिए आता है। अपने-आप से-दर्शकोंसे बातचीत करता है, चौकोर भूमिपर पहुँचता है। झुककर पानी पीनेको होता है। बाहर यक्ष प्रकट होता है। सहदेव तथा यक्ष के प्रश्नोत्तर। सहदेव जल पीने बढ़ता है परंतु यक्ष प्रश्न पर प्रश्न पुछता है। बिना उत्तर दिये जल पीकर अचेत गिर पडता है। फिर नकुल सहदेव को

पुकारते आता है। यक्ष नकुल को प्रश्न पुछता है पर नकुल भी उसके प्रश्न का उत्तर नही दे सकता उत्तर दिये बिना जल पीने को बढ़ता है तो वह भी अचेत गिरता है। फिर भीम आता है। क्रोध से दोनो भाईयों को मृत स्थिती में देखकर क्रोधित होता है। यक्ष से वार्तालाप तथा प्रश्नोत्तर करता है। पानी पीने जाता है पर अचेत गिर पडता है। अर्जुन का आना यक्ष से वार्तालाप - मरे हुऍ भाईयों को देखकर क्रोधित होता है। यक्ष के साथ प्रश्नोत्तर - बिना उत्तर दिये जल पीता है परंतु अचेत गिर जाता है। फिर युधिष्ठिर आता है। यक्ष से वार्तालाप - प्रश्नोत्तर करता है, यक्ष का समाधान करता है। सहदेव को जीवित करता है। सहदेव गाता है, पृष्ठभूमि में नगाड़े का संगीत, यक्ष सबको जल पीलाकर जीवित करता है। सबके गाने के साथ ही नाटक समाप्त होता है।

उत्तरयुध्द

उत्तरयुध्द का दृश्य - पांचो पांडव चुप गंभीर बैठे है। दर्शकों के बीच से विदूषक उठकर मंच पर आता है - कहता है - वार्तालाप .... भीम अर्जुन नकुल सहदेव तथा युधिष्ठिर आपसमें वार्तालाप करते है। बीच में विदूषक बोलता है तो सब आश्चर्य से चकित होते है। युधिष्ठिर से विदूषक वार्तालाप करता है। हंसता है। फिर युधिष्ठिर जाता है। विदूषक अर्जुन से वार्तालाप करता है। युधिष्ठिर आतेही अर्जुन एक ओर हट जाता है - वार्तालाप। अर्जुन चले जाते है। भीम विदूषक से वार्तालाप करता है। भीम चला जाता है अर्जुन आता है वार्तालपा - युधिष्ठिर से वार्तालपा - अर्जुन - नकुल - भीम तथा विदूषक सभी मंचपर विदूषकसे वार्तालाप करते करते घेर लेते है। फिर चुपचाप बैठते है। द्रौपदी का आर्तनाद पृष्ठभूमि में सुनाई पडता है। विदूषक दर्शकों के साथ बोलता है - पाँचो भाई विचार कर रहे है। नाटक के अंत में द्रौपदी की चीख सुनाई पडती है और फिर पर्दा गिरता है।

नरसिंहकथा

डॉ. लाल का अगला नाटक है - 'नरसिंहकथा' इसका दृश्यबंध इस प्रकार - नाटक के अंदर नाटक प्रणाली अपनाई है - जय तथा विजय नाटक में नाटक करते समय ज्योतिषी तथा वैद्य की भूमिका निभाते है। दोनो में वार्तालाप नाटके पहले अंक के पहले दृश्य में। दर्शकोंसे भी वार्तालाप चल रहा है। वज्रदन्त आता है। तीनों में वार्तालाप। इसके दरम्यान गुप्तचर आकर चला जाता है। जय-विजय भी चले जाते है। गुप्तचर आकर वज्रदन्त से वार्तालाप करता है। वज्रदन्त चला जाता है। प्रल्हाद तथा हुताशन का प्रवेश - वार्तालाप - गुप्तचर सुनता है, भाग जाता है। प्रल्हाद की माताजी कयाधू का प्रवेश तीनो में वार्तालाप के दरम्यान पहला दृश्य समाप्त होता है। दूसरे दृश्य में क्रोध में जलता हुआ हिरण्यकशिपु घूम रहा है। दो अंगरक्षक भी खड़े है। गुप्तचर सूचना देकर भागता है तभी

प्रल्हाद, शकुनी, शम्बर तथा हुताशन आते है - वार्तालाप, फिर प्रल्हाद चला जाता है और वज्रदन्त आता है - हिरण्यकशिपु क्रोधिष्ट है। गुप्तचर, महादण्डधारी महानिरीक्षक तथा महारक्षक आते है - वार्तालाप - हिरण्यकशिपु क्रोध में सभी को जाने की आज्ञा देता है - तो सभी चले जाते है। वज्रदन्त के साथ शुक्राचार्य का प्रवेश - शुक्राचार्य तथा हिरण्यकशिपु में वार्तालाप और दूसरा दृश्य यहाँ पर समाप्त होता है। तीसरे दृश्य मं हिरण्यकशिपु का दरबार दृश्यित है। चापलूस, मसखरे सिंहासन के चारों ओर खड़े है - विदूषक आता है - आपसे में वार्तालाप। वैद्य, ज्योतिषी, मसखरे, चापलूस तथा विदूषक में वार्तालाप। राजकवी गाता है। हिरण्कशिपु अंगरक्षक के साथ आते है। सारे कार्यरत करने का बहाना करते है। वार्तालाप के बाद महासुंदरी आकर गाने नाचने लगती है, चली जाती है। हिरण्यकशिपु इशारे पर सबको पास बुलाते है - वार्तालाप। शकुनी और शम्बर जय विजय को बंदी बनाकर लाते है - वार्तालाप। जय हिरण्यकशिपु का हाथ देखकर अनिष्ट बताता है। फिर उसपर उपाय भी बताता है। मिट्टी के घडे से शादी रचानेको कहता है - महासुंदरी आती है - हिरण्यकशिपु से वार्तालाप - इसीके दरम्यान पहला अंक समाप्त।

दूसरे अंक के पहले दृश्य में संगीत बज रहा है, विवाह का वातावरण है। पूर्णतः अलकृंत मिट्टी का घडा दुल्हन की तरह लाया जा रहा है। महासुंदरी झुंडासहित स्त्रिया भी गा रही है - हिरण्यकशिपु साथ पांवर और दूल्हा के रूप में अपने दरबारियों और परिहार सहित आता है। ब्याह रचाया जाता है। शादी के समय राजा का दुपट्टा तथा घडे का गठबंधन होता है। पुरोहित घडे को हाथ में उठा लेता है तथा सप्तपदी होती है। सब गाते है, महाराज घडे को फोडना चाहते है, परंतु कयाधू ऐसा नही करने देती। महारक्षक ने कयाधू को अंदर आने दिया इसलिए उसे पकडा जाता है। हिरण्यकशिपु कयाधू से बाते करते है तभी शुक्राचार्य आते है। फिर वार्तालाप। हिरण्यकशिपु घडे को तलवार मारता है। कुम्हारिन भगवती घडे को वापस ले जाना चाहती है। एक घटना का वृन्तांत बताकर घडे से शादी की है क्या ऐसा पुछती है। हिरण्यकशिपु भयभीत होकर घडा अंदर ले जाता है और पहला दृश्य समाप्त होता है। दूसरे दृश्य में जय-विजय वार्तालाप करते चलते है। दो अंगरक्षक आते है - वार्तालाप, वज्रदन्त बाते करके चला जाता है - जय-विजय फिरसे वार्तालाप करते है। शुक्राचार्य का आगमन - वार्तालाप - तीनो प्रल्हाद के पास जाते है, दृश्य समाप्त होता है। तीसरे दृश्य में प्रल्हाद कुछ लोगों में घिरा बैठा है। एक किनारे महासुंदरी बैठी है - अलगसे वज्रदन्त खडा

है। वार्तालाप हो रहा है। शुक्राचार्य का जय-विजय के साथ आगमन तथा वज्रदन्त का प्रस्थान। जय-विजय वज्रदन्त को खास निगाहोंसे देखते है। शुक्राचार्य तथा प्रल्हाद का वार्तालाप। शुक्राचार्य क्रोधित होकर चले जाते है। जय-विजय का भी प्रस्थान उसी के साथ तीसरा दृश्य समाप्त। चौथे दृश्य में संध्या का समय है। प्रल्हाद को राजाके दो अंगरक्षक बंदी बनाकर ले जाते है, वज्रदन्त तथा सुंदरी उन्हें रोकते है परंतु यात्रा रूकती नहीं। महासुंदरी वज्रदन्त की मसखरी करके प्रल्हाद को छुडाती है। अंगरक्षक वज्रदन्त के पाव दबाते है। वज्रदन्त सो जाता है, प्रल्हाद तथा महासुंदरी में वार्तालाप, वज्रदन्त का जगना सबका चले जाना। रास्ते में वार्तालाप चलते चलते चौथा दृश्य समाप्त। पांचवे दृश्य में हिरण्कशिपु सिंहासन पर विराजनमान है। राजकवि, राजज्योतिषी और विजय वैद्य खडे है। एक कोने में विदूषक दिख रहा है, सभी में वार्तालाप - नौकर औषधी लाता है। खुद पीकर फिर हिरण्यकशिपु पिता है। वार्तालाप, प्रल्हाद, वज्रदन्त दोनो अंगरक्षकों के साथ प्रविष्ट। वज्रदन्त कुछ पढ़कर सुनाता है। प्रल्हाद को दोनो अंगरक्षक पकड़कर ले जाते है। आग लगी हो ऐसा शोर सुनाई देता है - विदूषक का प्रस्थान महारक्षक का आगमन उसके पिछे ढुंडा का आगमन। ढुंडा तथा महारक्षक का वार्तालाप। ढुंडा अपनी आग में जल रही है यह समाचार महारक्षक हिरण्यकशिपु को देता है। वज्रदन्त का आगमन, जय-विजय का आगमन। वज्रदन्त राजवैद्य को बुलाकर लाता है - वार्तालाप हिरण्यकशिपु के जयजयकार में दृश्य तथा अंक की समाप्ती।

तीसरे अंक के पहले दृश्य में रात का पिछला पहर दृशियत किया है। प्रल्हाद लोगों से वार्तालाप कर रहा है, हुताशन का आगमन - वार्तालाप। प्रल्हाद का अन्य लोगों के साथ प्रस्थान तथा हुताशन का छुप जाना। महासुंदरी के पिछे दो अंगरक्षकों का आगमन - वार्तालाप - दोनो अंगरक्षकों में मल्लयुध्द। हुताशन का प्रकट होना - दोनो अंगरक्षकों का भाग जाना। महासुंदरी तथा हुताशन का वार्तालाप। जय-विजय, दो अंगरक्षक तथा वज्रदन्त का आगमन। सभी में वार्तालाप। अंगरक्षक जय-विजय को मारते है तभी हुताशन को देखकर भाग जाते है। हुताशन तथा वज्रदन्त का वार्तालाप। दोनों में कृपाण युध्द - हुताशन वज्रदन्त को मार डालता है। दृश्य समाप्ति। दूसरे दृश्य में दिन का समय - राजमहल के सामने गुप्तचर आसमान में देखता है - महादण्डधारी का आगमन - सब उपर देखते है। विदूषक का आगमन - बडबडाना और उपर देखना। विदूषक हिरण्यकशिपु को लाता है। हिरण्यकशिपु सभी को डाँटता है। वार्तालाप - सभी को जाने की आज्ञा - अपने से बडबड़ाना फिर

घबराना। सभी को फिर से बुलाना - प्रल्हाद से युध्द करने की तयारी तथा वार्तालाप के साथ-साथ दूसरा दृश्य समाप्त।

चौथे अंक के पहले दृश्य में संध्या का समय है। महासुंदरी अपने कक्ष को दीपके से सजाकर गा रही है। प्रल्हाद का वहाँ पर आगमन। महासुंदरी का चरणस्पर्श करना - वार्तालाप। रोना-प्रल्हाद को जल पिलाना फिर वार्तालाप। हुताशन का आगमन। वार्तालाप, महारक्षक का आगमन, वार्तालाप। थोडी देर में बाहर शोर तथा चीख सुनाई पडती है। हुताशन का प्रस्थान, शोर बढ़ता। महासुंदरी आलाप छेडती है, महारक्षक बाहर दौडता है, कुछ क्षणोबाद घायल भगवती का आगमन। बाहर शुरू लड़ाई का वर्णन करती है। महारक्षक दौडा आता है बातचीत के दरम्यान दृश्य समाप्त। दूसरे दृश्य में रात का समय, शुक्राचार्य का आगमन, प्रल्हाद को पुकारना, प्रल्हाद का आगमन तथा वार्तालाप इसके साथ दूसरा दृश्य समाप्त। तीसरे दृश्य में संध्या का समय हिरण्यकशिपु का राजकक्ष। महादण्डधारी, महानिरीक्षक, गुप्तचर आदि खडे है। अंगरक्षकों हाथ में खड्ग लिये हिरण्यकशिपु आगमन करता है - वार्तालाप। प्रल्हाद का आगमन। पिता-पुत्र में वार्तालाप। हिरण्यकशिपु प्रल्हाद को मारने के लिए तलवार निकालता है। नरसिंह के रूप में हुताशन का प्रकट होना - हिरण्यकशिपु क्रोधित हो जाता है, हिरण्यकशिपु तथा हुताशन में युध्द। युध्द करते-करते नरसिंह हिरण्यकशिपु को दबोच लेता है। हिरण्यकशिपु को अपने जांघ पर लिटा कर नाखूनों द्वारा चीरकर मार डालता है। अन्य पात्रों का प्रकट होना। अंत में सब मिलकर गाना गाते हैं और नाटक समाप्त होता है।

कलंकी

'कलंकी' डॉ. लाल का एक काल्पनिक मिथक है। यह एक अंकवाला तथा एकदृश्यवाला नाटक है। इसप्रकार आकाशवाटीपर नीले प्रकाश के उभरने के साथ कलंकी का संगीत उभरता है। जहाँ ये संगीत टूटकर बिखरता है वहीसे वायुमंडल में पुरूष और स्त्री स्वरों में क्रमशः ये स्वर उभरते है - है, हऊ ... क्रिं, हिं। बायी ओर से हेरूप डरासा भागता हुआ आता है - प्राणवेधी स्वर उनका पिछा करते है, वह भागता है, गिर पडता है, फिर भागत है, फिर गिरता है। इसी के अनुरूप स्वर भी गिरते उभरते है। पुरी ताकतसे वह भागता है, पर आक्रमक स्वर जैसे पकड़ लेना चाहते है। फिरसे स्वर गूँजते है - हेरूप दौडता गिरता भागता है। चरमबिंदू पर पहूँचकर बेशुधसा गिर पडता है। बीसुरी का संगीत फूट पडता है। उसमें सुधि जगती है। वह भयभीत है, माथा उठाये शून्य में

देखता है। कुछ क्षणोंबाद तीन कृषक आते है, बायी ओर खड़े होकर वार्तालाप करते है। हेरूप पूरी तरह जागता है, पूछताछ। हेरूप के कलाईयों की हथकडियाँ निकालते है। वार्तालाप - फिर गीत गाते है। परिक्रमा करते है। तारा का आगमन - कृषकोंसे वार्तालाप। दो कृषक स्त्रिया पूजा करती है। गाती है। परिक्रमा करके चली जाती है। उसी समय अवधूत तेजी से प्रकट होता है। ताड के पंखे से अपना मुख छुपाये है। अवधूत तथा हेरूप का वार्तालाप - हेरूप का थककर सो जाना - अवधूत अकेला बडबडाता है। कुछ देर बाद हेरूप उठता है - अवधूत मुँह ढ़ाँक लेता है - हेरूप अपनेसे बाते करता हुआ पिता को घुरता है और चिल्लाता है।

तीनो कृषक दोनो स्त्रिया, एक वृध्द तथा तारा दौडते आते है - अवधूत की प्रशंसा करने पर अवधूत चला जाता है, हेरूप वार्तालाप करता है, कृषक गाते है - सब धीरे-धीरे बैठकर हेरूप के सामने नतमस्तक होते है। अवधूत तेजीसे प्रकट होकर हेरूप को संमोहित करता है - हेरूप जागकर इन्कार करता है - वार्तालाप के साथ प्रकाश बुझ जाता है। प्रकाश वापस आनेपर तारा तथा दोनो कृषक स्त्रिया चौक करते, तोरण बन्दनवार लगाने, कलश, दीप आदि रखने सजाने का अभिनय करती हुआी गा रही है। वृध्द आता है, तीनो स्त्रिया पुष्पहार गुँफ रही है - वार्तालाप - तीनो कृषक हेरूप को नये वस्त्र और अलंकरण में सजाकर ले आते है। स्त्रिया स्वागत में उठती है। हेरूप आसन पर बैठाने जाने पर, तांत्रिक का प्रवेश के साथ वातावरण में बदलाव, भय तथा त्रस्तता आती है। तांत्रिक के प्रवेश से सब डरसे जाते है। सभी लोग तांत्रिक के साथ बीजाक्षर उच्चारण करते है। हेरूप का मुख भय से पीला पड़ता है। वार्तालाप। हेरूपपर बीजाक्षर का प्रयोग - तारा बढ़कर सामने आनेपर तांत्रिक उसे उठा लेता है जैसे तोल रहा हो। तारा को जमीन पर छोडता है, तारा पर सब ताने मारते है - तारा अपना माथा धरती में गड़ा देती है। तांत्रिक का तारा के पीठपर बैठने का अभिनय - तारा उठकर हेरूप के हाथ में तिल रखती है - हेरूप दान करता है। हेरूप को दो स्त्रिया अंजन लगाकर वृध्द मेखला बांधता है तो हेरूप तीनोंपर चोट करता है, तीनो चीखते है। दोनो कृषक हेरूप को पकडते है तो तांत्रिक उसके मुंह में मंत्र फूँकता है। हेरूप को पकड़कर प्रहार करता है, दो-तीन बार हेरूप गिर पडता है तब तांत्रिक उसे गलेसे पकडकर वार्तालाप करता है - प्रकाश केवल तांत्रिक के मुखपर है, तब तांत्रिक का स्वर बदलता है, हेरूप को अवधूत के दर्शन के लिए ले जाया जाता है - यात्रा शुरू होती है - चण्डी मंडपपर पहुँच जाती है तो अवधूत आता है। तारा सभी को मदिरा पिलाने का

अभिनय करके मृग-मृगया का भी अभिनय करती है। हेरूप सावधान होकर तांत्रिक पर आक्रमण करता है, तारा छुडाती है। अवधूत उससे उसका उत्तरीय छीनकर प्रस्थान करता है - तांत्रिक का भी प्रस्थान। फिर सन्नाटा। तांत्रिक हेरूप को पकडकर खींचकर ले जाता है तारा उसे रोकती है पर नहीं रूकते। वार्तालाप । तीसरा कृषक कहता है कि हेरूप को प्राणदण्ड दिया गया - स्त्रिया रोती है। अवधूत प्रकट होता है, लोग उसे बोलते है मारने को दौडते है, वह तो प्रेतात्मा है, मरता नही। वार्तालाप के बाद वही से प्रस्थान। वातावरण में घोडे दौडाने की आवाज। रंगमंचपर कलंकी का संगीत उभरता है, प्रकाश बुझ जाता है आकाशपाटीपर लालिमा स्थिर है।

मिस्टर अभिमन्यु

उनका अगला नाटक है - 'मिस्टर अभिमन्यु' दो अंकोवाला है। पहले अंक का पहला दृश्य बडा है - राजन का बाहरी कमरा, कमरे में ठेबल पर टाईपरायटर, कागज-पत्र आदि रखे है, फोन भी है। बीच के ठेबल पर अखबार, एश ट्रे आदि रखे है। एक बुक शेल्फ है जिसमें किताब तथा बच्चों के खिलौने रखे है। उपर एक टूटी हुआी छोटी सी पत्थर की मूर्ति और फूलदान रखा है। राजन पर प्रकाश - राजन फाईले देखता है, बुकशेल्फ का किताब देखता है, मूर्ति को देखता है, दूसरी किताब लेता है - विमल का - पत्नी का आगमन - वार्तालाप। बच्चे का खिलौना गिरता, विमल उठाती है। राजन कागजात इधर-उधर करके फाड डालते है - राजन का प्रस्थान। राजन के पिताजी आते है, सोफेपर बैठते है। वार्तालाप। राजन आता है वार्तालाप - पिताजी को फाईल देते है। विमल नास्ता कराने पिताजी को अंदर ले जाती है। आत्मन का प्रवेश - वार्तालाप - गयादत्त का प्रवेश - वार्तालाप - आत्मन का प्रस्थान। श्री टेबुल की फाईले ठिक ढंग से रखता है तथा खडा हो जाता है। राजन तथा गयादत्ता का वार्तालाप। पिताजी के साथ गयादत्त का प्रस्थान। विमल का आगमन - वार्तालाप के साथ प्रथम दृश्य समाप्त। दूसरे दृश्य में वही स्थान है - समय संध्या का - सूने मंचपर फोन की घंटी बजती है। श्री फोनपर बातचीत करता है, फोन रख देता है - राजन का आगमन - वार्तालाप। मेमसाहब - विमल का आगमन - वार्तालाप। राजन टेलिफोन करता है पर बेकार, विमल का प्रस्थान पिताजी का आगमन। राजन सहम जाता है - घबराता है। वार्तालाप - पिताजी का प्रस्थान तथा विमल का आगमन - विमल तथा राजन का वार्तालाप के साथ पहला अंक दूसरा दृश्य समाप्त हो जाता है।

दूसरे अंक के पहले दृश्य में वही स्थान, दूसरे दिन का समय, टेपरिकार्डर चल रहा है - राजन सुन रहा है - विमल का आगमन। टेप बंद करते है। वार्तालाप - विमल का लम्बे वार्तालाप के बाद प्रस्थान - आत्मन का प्रकट होना - वार्तालाप गयादत्त का प्रकट होना - तीनों में वार्तालाप। गयादत्त तथा आत्मन में वार्तालाप। राजन भयभीतसा प्रस्थान करता है। विमल तथा मिसेस राठोड का आगमन - वार्तालाप - विमल का भीतर जाकर फिर आना। वार्तालाप। आत्मन तथा राजन का प्रवेश-वार्तालाप। आत्मन तथा मिसेस राठौर का वार्तालाप - आत्मन का मजबुरीसे भागना। भीतर से विमल तथा राजन का प्रवेश - वार्तालाप। टेलिफोन - वार्तालाप। पिताजी का आगमन - वार्तालाप - मिसैस राठौर का प्रस्थान। पिताजी तथा विमल का प्रस्थान - श्री का फाईल लेकर आना। श्री का प्रस्थान, बायी ओर से शोर, श्री गयादत्त को रोखता है। गयादत्त जबरदस्ती अंदर आते है। गयादत्त तथा राजन में वार्तालाप। गयादत्त का प्रस्थान, राजन टाईप करता है, विमल का प्रवेश - वार्तालाप। पिताजी का आगमन, राजन से वार्तालाप - आत्मन का तेजीसे प्रवेश तथा राजन से वार्तालाप - पिताजी तथा विमल से वार्तालाप। गयादत्त का प्रवेश- वार्तालाप। आत्मन तथा गयादत्त का झगडा - पिताजी तथा विमल का प्रस्थान। गयादत्त तथा आत्मन का वार्तालाप - आत्मन के पीछे गयादत्त का प्रस्थान। कुछही क्षणों बाद पृष्ठभूमि से पिस्तोल चलने की आवाज, भीतर पिताजी और विमल का दौडे आना - वार्तालाप। दोनो बाहर दौडते है - गयादत्त का आगमन - वार्तालाप - तेजीसे गयादत्त का प्रस्थान। दूसरी ओरसे विमल दौडती हुआी आती है। वार्तालाप। तेजीसे गयादत्त तथा पिताजी का प्रवेश, वार्तालाप - विमल का बडबडाना - किसीको बीचमें बोलने नही देता - फोनकी घंटी भी बजकर चुप हो गयी। गयादत्त तथा पिताजी का वार्तालाप। राजन का क्रोध से प्रस्थान, उसके पीछे गयादत्त तथा पिताजी का प्रस्थान - विमल का शांत होना, प्रकाश बुझ जाता है - प्रकाश लौटने पर कम प्रकाश - टेबल पर टेपरिकार्डर चल रहा है। सोफेपर राजन मुर्तिवत बैठा है, सामने फाईल तथा अन्य कागजाद है। टेपसे विचित्र आवाज, राजन टेप बंद करता है। राजन का एकालाप। राजन उठता है, धीरे धीरे मंच का सारा प्रकाश बुझ जाता है- जैसे ही लौटता है - दिन जैसा प्रकाश डिनर के पूर्व का ऊँचा संगीत। पिताजी मेहमानोंसे बाते करते है, विमल मिसेस राठौर से बाते करती है- वार्तालाप - सभी ओर वार्तालाप। भीतर से बड़ी संजीदगी और रोबके साथ राजन का प्रवेश - लोग बधाई देते है, राजन भीड़ में घिरा है - लोग हसते है। गयादत्त गिलास से शराब पिते है तो राजन के उपर छिंटे गिरते है, भडक उठता है परंतु

लोगोंकी बातोंमें सुनाई नही देता। सब लोग खा-पी रहे है। राजन बिलकुल अकेला - बढकर फोन करता है - डिनर के वातावरण में नाटक समाप्त होता है।

एक सत्य हरिश्चंद्र

'एक सत्य हरिश्चंद्र' एक ही अंकवाला नाटक है। इसमें छे दृश्य है। प्रस्तावना में मंचपर गांव का दृश्य प्रस्तुत किया है। बायी ओर हरिजनों का कच्चा कुआँ- दायी ओर पिछे सवर्णोंका कुआँ। इसपर पुरोहित अपनी पूजा की तैय्यारी में लगा है। जैसे स्नान के बाद कुछ मंत्रपाठ कर रहा हो - कुछ क्षणों बाद घुमंतू - एक गरीब चमार पिछेसे आता है, कुएँपर रूकता है। पुरोहित कुएँसे जलभरा लोटा निकालते है - भगा देता है - अपने उपर जल छिडकता है - तथा पूजा में व्यस्त रहता है तभी गावका भूतपूर्व जमीनदार राजनेता देवधर का आगमन - चारो ओर देखकर आगे बढता है। परेशान तथा क्षुब्ध है - पुरोहित की ओर बढकर वार्तालाप - पुरोहित प्रणाम करता है - वार्तालाप। हरिजनोंके कुएँपर से लौका यह दृश्य देखता है। घुमंतू जाने लगता है, उसका साथ लौका देता है। अन्य लोग भी गाते है, उधर पुरोहित सत्यनारायण की कथा शुरू करता है। गांव के लोग कथा सुनते है। गरीब लोग भी बैठे कथा सुनते है। देवधर जीतन के साथ आता है। बातचीत - पुरोहित - देवधर - जीतन तथा लौका में वार्तालाप, बीच-बीच में पुरोहित की पूजा, शंख बजाना मंत्र पढना आदि, वार्तालाप भी, घुमंतु का गाना। फिर लौका सबको पूजा का आमंत्रण देता है - अक्षता, सुपारी हल्दी देता है। देवधर नहीं लेता, लौका सबको प्रणाम करके चला जाता है। देवधर तथा पुरोहित वार्तालाप, पुरोहित की पूजा समाप्त होती है। पुरोहित के साथ लोग जाते है, यहाँ पर प्रस्तावना समाप्त होती है। लोग गा रहे है, वातावरण में जनकोलाहल तथा संगीत उभरा है, देवधर तथा जीतन में वार्तालाप। गपोले नारद के भेस में आता है, वार्तालाप। कुछ घायल लोग कच्चो कुएँ पर बैठते है, झोपडीयोंसे स्त्रिया उन्हे संम्हालती है। पद्मा तथा देवधर का वार्तालाप तथा साथ प्रस्थान। गपोले तथा रंगा साथ-साथ गाते है - वार्तालाप - फिर गाना-संगीत। एक ओर विश्वामित्र के साथ हरिश्चंद्र, शैव्या और रोहित चलते हुए आते है - दूसरी ओर गांव के लोग खडे है - यात्रा निकलती है ' वार्तालाप के साथ पहला दृश्य समाप्त होता है।

दूसरे दृश्य में यात्रा चल रही है - रंगा जाता है, रास्ते में बासुरी बजाता चरवारा मिलता है। हरिश्चंद्र तथा विश्वामित्र में वार्तालाप, रोहित शव्या में भी वार्तालाप, बासुरी के स्वर संगीत के साथ

गाने के साथ दूसरा दृश्य समाप्त होता है। तीसरा दृश्य देवधर तथा जीतन का वार्तालाप, गपोले, माई आकर बैठ जाते है। देवधर पद्मा को पुकारते है - पद्मा आती है। संगीत बज रहा है, पद्मा गाती हुई नाचती है तथा तीसरा दृश्य समाप्त होता है। चौथे दृश्य में काशी का बजार, दुकाने लगी है, दुकानदार आवाजे लगा रहे हैं। एक ओर पतुरिया का कोठा - वार्तालाप - पतुरिया के कोठेपर संगीत उभरता है - पतुरिया छैला - ब्राम्हण आते है - वार्तालाप। एक गुंडा भंग पीकर आता है - पतुरिया नाचती है - सारा बजार चमक उठा है। थोडी देर बाद अकेले नारद आते है - बातचीत - हरिश्चंद्र के साथ विश्वामित्र, शव्या और रोहित आता है - वार्तालाप। काशी के लोग घिर आते है - एक डोम हरिश्चंद्र देखकर खरीदता है। रोहित पिता को सुनता है, इस बीच पतुरिया और सब लोग नाचते-गाते है। हरिश्चंद्र रोहित को गले लगाता है। वार्तालाप के साथ, गाने के साथ चौथा दृश्य समाप्त होता है।

पांचवे दृश्य में देवधर आते है - वार्तालाप। देवधर तथा जीतन का शब्दछल - गांव के लोग चारों ओरसे घिरे आते हैं। माई भी आती है - वार्तालाप के साथ दृश्य समाप्त। छठे दृश्य में लोग आते है - रंगा भी गाता है - गपोले सब को चुप करता है। रंगा गपोले को खींचकर ले जाता है - रंगा गाता है, दृश्य समाप्त। सातवा दृश्य पतुरिया का कोठा - लोग बैठे है - संगीत और नृत्य चल रहा है - वार्तालाप, पतुरिया गाती है - बायी तरफ से अकेला रोहित दिखता है, रोहित का एकालाप - कोठेकी सिढ़ियोंपर चुपचाप खडा है। बाहर से भांगवाला रोहित के साथ वार्तालाप करता है, पतुरिया ताली बजाती है, भांगवाला बढता है - भीतरसे शव्या साजशृंगार किये निकलती है - वार्तालाप - लोग हसते है - शव्या भांगवाले के साथ चली जाती है, पतुरिया गाती है। छैला आकर बडे आवेश में बडबडाता है। रोहित उसे रोकता है, वार्तालाप। दोनो में मलयुध्द होने लगता है, शव्या दौडे हुए आती है और रोहित की रक्षा करती है। लोग महफिलसे भागते है। पतुरिया की इशारे पर शव्या सामने आती है - वार्तालाप। छैला छुरा निकालता है, वार्तालाप। छैला रोहित की हत्या करता है। रंगा शव्या गाते है। विश्वामित्र और इंद्र का प्रवेश - वार्तालाप। रोहित जीवित होता है, लौका आरती करता है, नाटक समाप्त होता है।

अभिनेयता

भरतभुनि के नाट्यशास्त्रानुसार अभिनेयता नाटक का प्रमुख तत्व माना गया है। रंगमंचपर

नाटक प्रस्तुति के समय अभिनेयता गुण जन्मजात होना चाहिए, तभी वह अभिनय उच्च दर्जेका होगा। अभिनय माने नायक-नायिका द्वारा किया गया आंगिक व्यापार - अभिनय चार प्रकार का होता है- आंगिक, वाचिक आहार्य तथा तात्विक। भरतमुनिने दृष्टि अभिनय का वर्णन अद्वितीय किया है तथा दृष्टि को अभिनय की आत्मा माना है। रंगमंच प्रस्तुती के समय अभिनय का महत्व बेजोड हो जाता है। आंगिक अभिनय में मुख का अभिनय महत्वपूर्ण माना गया है। इसके अंतर्गत भंवे, आँखे, नाक, अधर, कपोल तथा टोढी आदि समाविष्ट रहते है। शरीर तथा चेष्टाकृत अभिनय भी अभिनेय है। चेष्टाकृत अभिनय का मतलब किसी विशिष्ट चेष्टा से, भावसे, तथा अनुभूति से किया जानेवाला अभिनय। संस्कृत साहित्यमें अभिनय का अर्थ है - नाट्य प्रयोग द्वारा नाटक में मुख्य अर्थ को प्रेक्षक के हृदय यतक सम्पेषित करना। अभिनेयता में वर्तमान स्थिती का चित्रण रहता है, अभिनेता अपना अभिनय बुध्दि तथा हृदय के आधार पर प्रस्तुत करता है। इसलिये अभिनय विचारपूर्वक तथा भावपूर्ण रहने पर सत्य तथा स्वाभाविक भी रहता है। जिस नाटक में अभिनेयता नही वह रंगमंचपर प्रस्तुती योग्य नही समझा जा सकता।

"अभिनय के माध्यम से मंचबोध, देशकाल, परिस्थिति का अभिज्ञान तथा उन्ही के सहारे दर्शकों को नाटक के पात्रों तथा भावों से साधारणीकरण का कार्य, उन्हें परिरूपित कर कल्पना - लोक में ले जाने का धर्म - इतनी मर्यादा है, संस्कृत रंगमंच अभिनय की। कारण यह कि, संस्कृत नाटक और रंगमंच का चरम उद्‌देश्य था दर्शकों को लोकोत्तर आनंद देने, अर्थात रसानुकृति करने की।"[7] संस्कृत अभिनय में मंचबोध, तथा साधारणीकर महत्वपूर्ण बात मानी गयी है। साधारणीकरण अर्थात रसानुभूति की नीवपर नाटक खडा है। नाटक का उद्‌देश्य है अभिनय करना। अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा, केशभूषा आदि का समावेश रहता है। अभिनय का मतलब केवल चेष्टामात्र नही, इसमें भावनात्मक स्पर्श भी रहता है। अभिनय शाश्वत कला का द्योतक है। अभिनय समर्थनात्मक, सहानुभूतिपूर्वक भावपूर्ण, सत्याभासित तथा अनुक्रियात्मक होना चाहिये। यह कला सामूहिक है। अभिनय के संदर्भ में डॉ. लाल के विचार दृष्टव्य है - "अभिनेता का अभिनय अगर नाटक में दी गयी भूमिका के अनुसार सीमित है तो दर्शक को नाटक बोलते हुए दिखाई जरूर पडेगा, कभी सुनाई नही पडेगा। नाटक अभिनेयता के माध्यम से देखना सुनना और रंग लाना तभी संभव है जब उसके चरित्र और व्यक्तित्व में यह सत्य सदा विद्यमान रहे कि वह अंधकार से प्रकाश की ओर कुछ ले जा रहा है।"[8]

निर्देशक अभिनेता को भूमिका समझाकर अपना कार्य पूरा करता है, परंतु रचनाकार के भावना को उद्घाटित करने का कार्य अभिनेतापर निर्भर रहता है। अभिनय का स्तर केवल समझ तक सीमित नही, उसका स्तर भाव तथा श्रद्धा के संलग्न है और यही भाव तथा श्रद्धा कालान्तर में विश्वास में बदलती है। इस प्रकार अभिनेयता एक उच्चादर्श स्थापित करता है। अभिनेता या उसके अभिनय कला का निरन्तर विकास अभिनेता के भूमिका के सच्चे संबंधपर निर्भर रहता है। अभिनेता का संबंध दर्शक तथा समाज से सहजाअंतर्गत होना चाहिये। इससे दर्शक तथा अभिनेता अर्थात अभिनेयता द्वारा नाटक और रंगभमि के प्रति सहज प्यार, बारबार अभिनय करने या देखने की लालसा तथा उसी भूमिका के साथ समरसता इतने फायदे होंगे। अभिनयकला में दो तत्वों का योग होता है - मूक अभिनय तथा वाणी। मूकाभिनय का संबंध हावभाव, मुखाकृति गीत और क्रियाव्यापार से होता है और वाणी मुख से निस्तृत मानवीय ध्वनि की विविध विशेषताओं घनत्व, गुण और तारत्य - से सम्बन्ध है। दोनों का योग रंगमंच पर जीवन की अभिव्यक्ति करता है। रंगमंचपर दर्शक केवल नाटक की कथावस्तु सुनने नही आते तो उस कथावस्तु को हावभाव द्वारा प्रस्तुत करनेवाले अभिनेताओं को देखने का मोह भी उतना ही रहता है।

" अभिनेता नाटककार के लिये सवांदों को बोलने और रंगसंकेतों का निर्वाह करनेवला व्यक्ति मात्र नहीं है। वह नाटककार द्वारा रेखांकित पात्र की भूमिका में उतरते हुए उसकी शब्दार्थमयी योजना को एक जीवन्त स्वरूप प्रदान करता है। "[9]

रंगमंच की दृष्टि से पात्रों के क्रियाकलाप :

रंगमंच, अभिनेता आदि के बारे में हमने पिछे देखा है। पात्रों की सबसे महत्वपूर्ण बात होती है अभिनय - जो कभी पात्र को वाणी के माध्यम से तो कभी हावभाव के माध्यम से महत्व प्रदान करती है। नाटक प्रस्तुती के समय जिसप्रकार रंगमंच अनिवार्य होता है उसी प्रकार अभिनेता या पात्र भी अनिवार्य है। रचनाकार अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा ही नाटक में पात्र को खड़ा करता है। अभिनय के लिये पात्रों की आवश्यकता पड़ती है। हमने पिछले अध्याय में पात्र की परिकल्पना तो देख ली है अब केवल रंगमंच की दृष्टि से उनके क्रियाकलापों के बारे में चर्चा करनी है। रंगमंचपर नाटक प्रस्तुत करते समय पात्र को अपना क्रियाकलाप अच्छी ढंग से प्रस्तुत करना पड़ता है। अभिनेता में आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा तात्विक अभिनय के सारे गुण मोजूद होने पड़ते हैं तभी उसका अभिनय

दर्शकों पर प्रभाव डाल सकता है। पात्रों के क्रिया-कलाप द्वारा ही तो दर्शक अपने स्थान पर आबद्ध रहने में मजबूर होता है या वह नाटक बार-बार देखने के लिये उद्युक्त होता है। नाटक का उज्वल भविष्य पात्रों के क्रिया-कलापों पर आधारित होता है। अब हम उनके मिथक नाटकों द्वारा पात्रों के क्रियाकलापों की चर्चा करेंगे।

सूर्यमुख :

' सूर्यमुख ' उनका पहला नाटक है जो पुराण के आधार पर प्रस्तुत किया है - यह नाटक एक आत्मसाक्षात्कार स्थिती का द्योतन करता है। इस नाटक का एक सामान्य पात्र दुर्गपाल समस्या को अनेक रूपों में प्रस्तुत करता है। पात्रों के क्रिया-कलाप या उनके अभिनयद्वारा प्रस्तुत होते हैं, या वार्तालाप द्वारा। दुर्गपाल कहता है - " क्या वास्तव में प्रद्युम्न ने अधर्म किया है ? बोलो, प्रेम अधर्म है क्या ? "[10] दुर्गपाल प्रद्युम्न के महत्व को स्वीकार करता है उसे नया कहता है, भविष्य कहता है तथा सूर्यमुख भी कहता है। बार-बार उसे दिलासा देकर उसे भविष्य की ओर ले जाने का उसका भविष्य उज्वल करने की कौशिश करता है। अपने आप को सब का सेवक कबूल करता है। आखिर में उन्हीं के लिये अपना प्राण भी गमाता है। सामान्य पात्र होकर भी नया आदर्श स्थापित करता है। डॉ. लाल ने उसे इतिहास दृष्टा भी कहा है। वास्तव में वह दुर्गपाल है रक्षा करना या परिस्थिति का सामना करना ही उसका धर्म है, पर वह भाग्यवादी बनने पर विवश होता है।

प्रद्युम्न तथा वेनुरती नाटक के नायक हैं। प्रद्युम्न वेनुरती के मिलन को तडपता है परंतु मिलन के क्षण में अपने आप को छुपाने की कोशिश करता है। वेनुरती को प्राप्त करने के लिए पूरी जिंदगी द्वारिका से लड़ता रहता है। द्वारिका का अंध:कार अपने और वेनुरती के प्यार से मिटाना चाहता है परंतु असफल होता है। अंत में वेनुरती पर संशय करता है, कहता है - ' मेरे सारे विश्वास मेरे शत्रु थे। ' यदुवंशियों के साथ युद्ध करते करते समाप्त होता है। वेनुरती भी प्रद्युम्न के मिलन को तडपती है, सारा विरोध, पहचानकर भी उसे बचाने का साहस करती है। कहती है - ' यहाँ अभी-सार के लिए आयी थी कि इस निर्जन पथपर तुम आओगे। मेरे प्राण ! मैं हर युग में पथ निहारती खड़ी रह जाती थी, तुम पथपर चुपचाप बढ़ जाते थे कभी ऋतुराज बनकर कभी सुक्ष्म होकर। इस बार पथ पर मैं बढ़ आयी, ताकि मै तुम्हें प्राप्त कर सकूँ। ' परंतु आखिर में हारकर मिलन के पूर्व ही दोनों प्रद्युम्न वेनुरती की जीवन यात्रा समाप्त हो जाती है।

व्यासपुत्र स्वार्थी पात्र के रूप में प्रस्तुत हुआ है। वह द्वारिका के लोगों को भडकाता है। प्रद्युम्न वेनुरती के खिलाप। वह यह सारी बातें केवल आत्मिक समाधान के लिये करता है। बभ्रु तथा सांब राजमुकुट तथा राजगद्दी के लिए प्रद्युम्न तथा आपस में लडते रहते हैं। द्वारिका का असली वारिस प्रद्युम्न है यह बात उनको मालूम है इसलिये प्रद्युम्न वेनुरती के नाजायत प्यार का फायदा उठाकर उसे समाप्त करने का बहाना बनाते हैं। रुक्मिनी भी विरोध करती है, परंतु आखिर में माँ का हृदय हारकर प्रद्युम्न को सहारा देती है, परंतु कोई फायदा नही होता। शुरू में वह परम्परानुसार प्रद्युम्न-वेनुरती के प्रेम को पाप समझती है। उनके प्रेम के विरत करना चाहती है। पर अंत में प्रद्युम्न वेनुरती के मृत्यु पर शोक प्रकट करती है। अन्य पात्र भी परिस्थिति के अनुसार ही प्रस्तुत किये हैं। उनके क्रिया-कलापों द्वारा नाटक में कोई महत्वपूर्ण तत्व उजागर नही होता, केवल भिखारियों के वार्तालाप से नगर की स्थिति राजा के प्रति उनका आदर तथा प्रद्युम्न वेनुरती के प्रति हिंसाभाव और नाराज की प्रकट होती है। आहुकी के शिशु को ही आखिर में सूर्यमुख बनाया जाता है।

यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध :

' यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध ' दो लघु नाटक एकत्रित संग्रहीत है। इन नाटक के पात्रों का चयन करते समय नाटककार की दृष्टि मनुष्य के आदिम अवस्था को उभाना मात्र थी। उत्तर युद्ध के पात्रों में द्रौपदी को रंगमंचपर प्रस्तुत नहीं किया, केवल उसके बारे में पांचो पांड्व चर्चा मात्र करते दिखायी देते हैं। उत्तरयुद्ध में द्रौपदी को शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है, जो पांचो पांडवों को बचाने के लिये अवकाश नही है। पांचो पांडव निजी व्यक्तित्व, बड़प्पन के उजागर करने के लिये द्रौपदी का बलि चढ़ा देते हैं। नाटककार का उद्देश्य था महाभारत के पांडवों की आदर्श छबी को तोड़ना तथा वर्तमान समाज और काल के परिप्रेक्ष्य में उन पात्रों को प्रस्तुत करना। पांडवों के वार्तालाप द्वारा हावभाव द्वारा द्रौपदी के प्रति स्वार्थ, एकाधिकार की भावना को जगाना मात्र नाटककार का उद्देश्य था। इसमें जो विदूषक दर्शाया गया है वह सत्योत्घाटन करता रहता है। पांचो पांडवों को अलग ढ़ंग से प्रस्तुत करना चहाता है। पांडवों की महाभारतीय स्थिती - जैसे पांचो भाई एकसूत्र में आबद्ध है - यह छबी तोडता है। वास्तव में पांचो भाई अलग-अलग है, उनका अपना निजि स्वार्थ है परंतु आपस में जब वार्तालाप करते हैं तो सावधानी बरतते हैं। पर आखिर में पोल खुल जाती है।

यक्षप्रश्न का यक्ष दर्शक को प्रथम दर्शन में तो खलनायक लगता है क्योंकि वह चारों

पांडवों को मृत करता है। प्यासे पांडवों को पानी पिने नही देता। पांचो भाईयों में तो चार - नकुल, सहदेव, भीम तथा अर्जुन अपने अहं में डूब गये है। उनको दूसरा महत्वपूर्ण नही लगता। युधिष्ठिर को दूसरा महत्वपूर्ण लगता है, दूसरों के मन को समझनेकी, पहचचाननेकी ताकत है उसमें, इसलिए वह श्रेष्ठ नायक के रूप में, श्रेष्ठ पात्र के रूप में नाटक में उभरकर आया है। यक्ष के प्रश्न या उसके क्रियाकलाप नाटक की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुए भी दर्शकों के सहानुभूती को प्राप्त नही करता, इसलिए यक्ष प्रतिनायक या कलानायक के रूप में उभरा है। चारों पांडव अहं में डूबे है, फिर भी अत्यंत प्यासे होने की वजह से दया के पात्र बना जाते है। पात्रों यही क्रियाकलाप दर्शकों की सहानुभूती खोते है या पाते है। नाटका महत्व बहुत अंशो में दर्शकों पर निर्भर रहता है।

डॉ. लाल का नाटक 'नरसिंहकथा' का नायक प्रल्हाद हिंस्त्र, तानाशाही तथा एकाधिकार का विरोध करता है। पुराण का प्रल्हाद एक छोटासा बालक था परंतु डॉ. लाल ने अपने नाटक में प्रल्हाद को एक आदर्श युवक के रूपमें उभारा है। प्रल्हाद लोगों को - जनसामान्य को - उनका अधिकार दिलाने की पक्ष में है। वह आखिर तक अपने आप की पर्वा किये बगैर लोगों के हित के लिए छटपटाता है। प्रतिनायक हिरण्यकशिपु निरंकुश राजा के रूप में उभरा गया है। हिरण्यकशिपु का चरित्र भी अर्थवान है, परंतु हिरण्यकशिपु अवध्य है तो प्रल्हाद साधनहिन प्रेममय है। प्रल्हाद युध्दरत है, पर घृणारहित है। प्रल्हाद स्वतंत्रता के लिए, मानवीय मूल्यों के लिए लड़ता है तो हिरण्यकशिपु एकाधिकार के लिए राजशासन को हासिल करने के लिए युध्दरत है। दोनो पात्रों के क्रियाकलाप परस्परविरोधी है। एक ओर अहंकार हैतो दूसरी ओर त्याग, एक ओर हिंसा है तो दूसरी ओर मंगलमयी भावना। दोनो पात्र बुध्दिवादी, विचार तथा भावनात्मक के रूप में उभरे है। जो रंगमंच की दृष्टि से एकदम उचित मालूम पडते है।

हुताशन को नरसिंह के रूप में प्रस्तुत किया है। नरसिंह के मन की मानवीय शक्ति को हिरण्यकशिपु का हिंसाचार, राज्यशासक पशुवत बनने को मजबुर करता है। वैसे हर मानव में पशुतत्व निहित रहता है, परंतु वह उजागर नही होता, जब कभी मौका मिले तो यह पशुतत्व अवश्य उभरता है। नरसिंह दर्शकों के भावना को हिलाकर रख देता है -

"सुनो नरसिंह कथा। ऐसा पशु हुआ है और होता रहेगा।
सावधान - ऐसा पशु हुआ है - वह पशु हमारे रक्त में है, वह फिर नही जनमें, उसके लिए जन-जन

को नरसिंह बना होगा।"[11] जड वनस्पती, पशु तथा मानव का योग ही नरसिंह है, यही हुताशन की उसकी क्रियाकलाप की विशेषता है। इस चरित्र में व्यक्ति का विकास रेखांकित किया है।

डुंडाद्वारा हिरण्यकशिपु के नीचता का परमोच्च बिंदु स्थापित किया है। डुंडा हिरण्यकशिपु की बहन है, जो उसके नक्शे कदमपर चलती है, जो अंत में अपने ही आग में भस्म होती है। अन्य पात्रोंकी अपनी विशेषता है जो नाटककारने आधुनिक धरातल पर प्रस्तुत की है।

'कलंकी' नाटक के पात्रों में तंत्रविद्या का प्रभाव दिखाई पडता है। केवल हेरूप ही ऐसा पात्र है, जिसपर तंत्र का कोई प्रभाव नहीं पडता है। हेरूप एक जागरूक नागरिक के रूप में उभारा गया पात्र है। वह नाटक के अंत तक लोगों के अंध:विश्वास तोडकर परंपरा को तोडकर मानवी हक्क दिलाने की चेष्टा करता है। रूढिग्रसता से जगाना चाहता है। लोगों को वास्तविकता का ज्ञान कराना चाहता है। अवधूत को भटकने से रोकता है, परंतु नाटक के अंतमें अवधूतद्वारा ही मारा जाता है। उसके जागृतावस्था से अवधूत तथा तांत्रिक सतर्क होकर उसे नष्ट कर देते है। अवधूत तो नाटक का प्रतिनायक है, वह असल में अकुलक्षेम की प्रेतात्मा है। परंतु अपनी प्रेतात्मा को जगाने का कारण वही लोगों को मानता है जो अंध:विश्वास के कारण खुद तो निष्क्रिय है परंतु जागने का प्रयत्न भी नही करते। अकुलक्षेम कहता है -

"मैं तुम्ही सबकी से जन्मा हूं, तब भी और मृत्यु के बाद भी मैं तुम्ही सबकी इच्छा हूं।"[12]

अपनी प्रेतावस्था में पुनरागमन लोगों के माथेपर थोपता है। अकुलक्षेम के कार्यकलाप बिलकुल निरंकुश है, परंतु जबतक सामान्य जनता उन्हे सह लेती है, तब तक वह निर्भय है। नाटक में नायक मर गया है और प्रतिनायक भी अस्तित्वहीन है, वह एक विशेषता के रूप में उभरी हुई बात है जो पात्रों के क्रियाकलापों को महत्वहीन बनाती नहीं परंतु दर्शकों के खयाल से तो नाटक की उद्देश्यपूर्ती नही के बराबर है। तीसरा कृषक तो असहाय है, परंतु तारा तो अलग व्यक्तित्व में खडा किया जा सकता था। तारा की तडफ, तीसरे कृषक की चंचलता आदि नाटक में रंग भरने का प्रयास करते है परंतु उन पात्रों के क्रियाकलाप भी निष्प्रभ से मालूम पडते है। दर्शकों के सामने सभी पात्र कुछ न कुछ उद्दिष्ट स्थापित करे यह प्रत्येक नाटक का उद्देश्य रहता है। रंगमंच पर अकुलक्षेम के वर्तमान शासक के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य मात्र सफल हो गया है, परंतु हेरूप को मार कर दर्शकों की अपेक्षा को भंग किया गया है।

'मिस्टर अभिमन्यु' डॉ. लाल का एक बेजोड़ नाटक है। इस नाटक में पात्र राजन वास्तव में तीन रूप में उभारा है। जैसा आत्मन राजन की आत्मा, राजन खुद तथा गयादत्त, राजन का बाहरी रूप। राजन की आत्मा है आत्मन तथा उसके कार्य का नतीजा है गयादत्त - वर्तमान राजन है। राजन के व्यक्तित्व की असलियत आत्मन तथा गयादत्त ही है। केजरीवाल, गयादत्त की व्यक्तित्व को उकसाने वाला, उसे विनाश के प्रति ले जानेवाला पात्र है। उसके कार्यकलापों द्वारा एक बीभत्स रूपही उभरकर आता है। भ्रष्टाचार का पुतला है केंजरीवाल तथा गयादत्त।

"असंस्कृत मर्यादाहीन गयादत्त राजनीतिक अवसारवादिता का प्रतीक है जो राजन के व्यक्तित्व का ही दूसरा अंश है। वस्तुतः गयादत्त की अवसावादिता, आत्मन की सिध्दान्तवादिता और व्यवस्थापन के चक्रव्यूह में फसे राजन की चीखपुकार हमारे वर्तमान जीवन की खोकलेपन की ताना-बाना प्रस्तुत करती है। नाटक में जितने भी पात्र है वे सभी अलग-अलग चरित्र होकर भी अलग-अलग तरह के मिस्टर अभिमन्यु है और सब अपने-अपने 'चक्रव्युह' में बंदी है, सब एक दूसरे के लिए चक्रव्युह बनते है।"[13]

पिताजी का चरित्र आदर्श बनते-बनते केजरीवाल तथा गयादत्त के संपर्क में आकर धुंदला पड जाता है। विमल तथा मिसेस राठौर आधुनिकता की कठपुतलियाँ-सी उभरकर आयी है, जो आधुनिकता के नाम पर कुछ भी कुकर्म करने को तैय्यार है। भ्रष्ट मार्ग पर चलने को हिचकिचाती नही। राजन का पात्र तो बेचारा पात्र ही बनकर उभर आता परंतु नाटक के अंत में अपनेआप का पिता तथा पत्नी के हवाले करके अपने उच्चादर्श से भ्रष्ट हो जाता है। उसे कोई समझ नही लेता। आखिर में वह अपने आत्मा की हत्या करके ही जीवित रहता है। प्रत्येक पात्र के क्रियाकलाप अपने व्यक्तित्व से भिन्न जान पडते है, उनको करनी होती है एक बात परंतु वास्तव में वह पात्र दूसरी ही बात करता है। कई स्थानपर इस बात का उदाहरण मिलेगा। जैसे पिताजी केजरीवाल को समझाने जाते है, परंतु उसके जालमें खुद ही फसकर अपना निर्णय बदल देते है, और राजन को भी मजबूर करते है।

'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक अपातकालीन है। उस नाटक का नायक है लौका जो नाटक के अंदर नाटकप्रणाली में हरिश्चंद्र के रूप में उभरता है। हरिश्चंद्र के रूप में लौका जनसामान्य को पारतंत्र का की बेडी से छुडाना चाहता है। पुराण की हरिश्चंद्र कथा तथा पात्र को बदलकर आधुनिक हरिश्चंद्र पेश करता है। कहता है - हरिश्चंद्र आजतक परीक्षा देता रहा पर अब विश्वामित्र तथा इंद्र को सत्य की परीक्षा देनी पडेगी। हरिश्चंद्र आजतक सत्य जी रहा था अब यही सत्य इंद्र को

जीना पडेगा। पुराण के हरिश्चंद्र को सत्य की परीक्षा देकर स्वर्ग जाना पड़ा पर लौकारूपी हरिश्चंद्र स्वर्ग जाने को नकारता है। वह पृथ्वीपर रहकर जनसमाज के अधिकारों को दिलाकर उनके लिए लडना चाहता है। जातियवाद नष्ट करना चाहता है।

देवधर तथा जीतन गांव में लौका के विरोध में दर्शाये है। परंतु जीतन जब विश्वामित्र के पात्र का चरित्र उभारता है तो वह सत्य को पहचान जाता है और देवधर का साथ छोड़कर लौका का साथ देता है। अपने आप से संघर्षरत रहकर सत्य का साथ देता है। देवधर गांव का मुखिया है वह तो अपना अधिकार प्रस्थापित करके अपने तलवे के नीचे सबको देखना चाहता है। अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता है। अपने व्यक्तित्व को उभारकर सबपर छा जाना चाहता है। शव्या तथा रोहित भी अपना अलग व्यक्तित्व अगल क्रियाकलापों के आधार पर नाटक में अनन्यस्थान प्राप्त किये हुए है। पुराण का रोहित बालक है परंतु आधुनिक रोहित युवक है, सच, झुठ, अच्छा, बुरा सब बातों की पहचान रखनेवाला युवक है। अपने माता की रक्षा के लिये जान देनेवाला पात्र है। रोहित के लिये उसका अनुभव ही सत्य है। उसे सब कुछ मायावी तथा छलपूर्ण लगता है। देवधर अपना वर्चस्व प्रस्थापित कर चुका था, आजतक उसका विरोध किसीने नही किया परंतु आज लौका उसके कपट को जातियवाद को पहचान गया है और डटकर उसका सामना करके सभी जनता को पीडित जनता को उनका अधिकार दिलाने का प्रयास करता है और जीतन तथा अन्य लोगों के सहयोग से विजयी हो जाता है।

रंगदीपन अथवा प्रकाश योजना और ध्वनि संकेत -

भरतमुनि के नाट्यशास्त्रानुसार रंगमंच पर जो भी घटित होता है, वह पुर्वनियोजीत होता है। पुराणकाल में रंगमंचकी असुविधा के कारण नाटक खुले मैदान पर प्रस्तुत किये जाते थे, पर अब आधुनिक काल में रंगमंच पूर्ण रूप से विकसित है। अब अभिनेयता के साथ-साथ रंगदीपन तथा ध्वनिसंकेत का महत्वपूर्ण स्थान स्वीकारा गया। डॉ. लाल के नाटकोंद्वारा इस रंगदीपन का अर्थ समझ में आता है। इनके नाटकों में कुछ नाटक केवल एक अंकी है परंतु दृश्य पांच-छे दर्शाये है, कुछ नाटक में एक ही अंक तथा एक ही दृश्य है परंतु मंचपर प्रकाश बुझ जाने से दृश्य बदल गया है, यह बाते समझमें आनेमें देर नहीं लगती।

'सूर्यमुख' उनका तीन अंकवाला तथा विविध दृश्यवाला नाटक है। नाटक के दृश्य में

समयकाल तथा स्थान बताया गया है जो हमने पिछे देखा है। समय के उद्घाटन से प्रकाश योजना को सहायता मिलती है। पहले अंक का पहला दृश्य संध्याकाल का है इससे रोशनी में लालिमा ज्यादा दिखाई जा सकती है। दूसरे दृश्य में रात का समय तथा दूसरा प्रहर है, तो इसमें रोशनी एकदम धीमीसी दिखाई जा सकती है। वातावरण शांत होना जरूरी है। तीसरा दृश्य भी संध्या के समय का है जो रोशनी में लालिमा तथा वातावरण भी उत्साहित करता है।

दूसरे अंक का पहला दृश्य रात के समय में घटित होता है। इसलिये रोशनी-प्रकाश योजना धीमी, मध्यम-सी होनी आवश्यक है। दूसरे दृश्य में रात का दूसरा प्रहर है तो रोशनी और धीमी करना आवश्यक है। तीसरा दृश्य भी इसी समय पर घटित है। तीसरे दृश्य में व्यासपुत्र, प्रद्युम्न तथा वेनुरती का वार्तालाप चल रहा है। तो दुर्गपाल के वार्तालाप के समय प्रद्युम्न संगीकर की हत्या करता है और उसे प्रणाम करता है, तभी मंचपर पूर्ण रूप से अंधःकार छा जाता है। जब प्रकाश वापस लौटता है तो दुर्गपाल प्रद्युम्न की रक्षा के लिये सज्ज है। यहाँ इस दृश्य में प्रकाश योजना अलग ढ़ंग से प्रस्तुत की गई है।

तीसरे अंक में अर्जुन यदुकुल की सारी स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जाता दिखाई दिया है। समय दिन का होना जरूरी है इसलिये पूरे मंच पर उज्वल प्रकाश की व्यवस्था ही ठिक समझनी चाहिये। बाद में रात का समय भी दिखाया है। स्त्रिया विश्राम के लिये रूकती है और प्रद्युम्न वेनुरती का अंत दिखाया है।

इस नाटक के ध्वनिसंकेत कोई महत्व नही दर्शाया गया है। ध्वनियोजना ही नही, केवल दृश्य बदल और प्रकाश योजना को महत्व दिया गया है। बीचं बीचं में ध्वनि का उच्चरण या धीमा संगीत आवश्यक है। नाटककारने नाटक में कही पर भी ध्वनि संकेत नहीं दिया है। नाटक के बीच बीच एक वृध्द गीत गाता है तथा नाटक के अंत मे यदुकुल की स्त्रिया भी गीत गाती है, गीत गाते समय संगीत की आवश्यकता महसूस होती है।

डॉ. लाल का दूसरा नाटक ' उत्तरयुद्ध ' तथा ' यक्षप्रश्न ' लघुनाटक के रूप में एक ही अंक में प्रस्तुत है। नाटक ' उत्तरयुद्ध ' का समय तब याने महाभारत काल से लेकर आजतक है। इसलिये प्रकाश योजना का कोई विशेष महत्व नही है। ध्वनिसंकेत के लिये भी अवकाश नही है। नाटक के अंत में केवल द्रौपदी की चीख सुनाई देती है बस इसके अलावा कुछ नही।

' यक्षप्रश्न ' समय अनादि काल है पर ध्वनि योजना तथा प्रकाश योजना का महत्व नही। यक्षप्रश्न जंगल में घटित होता है। इसलिये प्रकाश योजना धीमी रखी जा सकती है, जिससे सेट पर प-लैट जंगल के पेडों का आभास निर्माण करते हैं। मंच पर अंधःकार होने का सवाल ही नही, नाटक के केवल एक ही दृश्य घटित होता है। ध्वनिसंकेत के केवल बहते जल की धीमा स्वर सुनाया जा सकता है।

उनका नाटक ' नरसिंह कथा ' में चार अंकों का नाटक है। दृश्य भी भरपूर अंकित किये है। यह नाटक के अन्दर नाटक घटित होता है। घंटी बजना या पर्दा उठाना केवल जुबानी तौरपर है। केवल दृश्यबदल के समय प्रकाश बुझता है और वापस आनेपर दूसरा दृश्य घटित होता है। इसप्रकार प्रकाश योजना का कोई खास महत्व नहीं है। नाटक के ध्वनिसंकेत के लिये, नाच, गाना, रोना हसना आदि क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। दूसरे अंक के पांचवे दृश्य में पृष्ठभूमि से शोर सुनायी पड़ता है। जैसे कही पर आग लगी हो, जो डुंडा अपने ही आग में जलती दिखायी पड़ती है। नाटक के अंत में हिरण्यकशिपु तथा हुताशन की लड़ाई के दरम्यान पृष्ठभूमि से संगीत नगाड़े की आवाज उभरती है। नाटक के अन्त में संध्या का समय दिखायी दिया है तो नाटक के अनुकूल है।

डॉ. लाल का नाटक ' कलंकी ' प्रकाश योजना तथा ध्वनि संकेत दोनों में महत्वपूर्ण है। इस नाटक के दृश्यबदल प्रकाश के बुझने से भी मालूम पड़ते है। और जब प्रकाश वापस लौटता हे तो दृश्यबदल दिखाई देता है। नाटक की शुरूआत आकाशपाटी पर नीले प्रकाश के साथ होती है। इसप्रकार नाटक में प्रकाशयोजना ध्वनि तथा संगीत पर आधारित है। इस नाटक में कलंकी का अपना एक विशिष्ठ संगीत है। जो अभिनय के समान बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुआ है। नाटक की शुरूआत नीले प्रकाश से है तो अन्तमेंलालिमा पायी जाती है।

" प्रकाश इसके बदलते, भागते चित्र को प्रकट करने में बहुत ही ज्यादा सहायक हो सकता है। काला रंग अंधःकार का है। विशेषकर जब अचानक सारा प्रकाश एक क्षण के लिये बुझ जाय। "[14]

संगीत की मूलरचना आदिवासी के पद्धति के अनुरूप हो सकती है। नगाडे, ढ़ोल, मुँह से बजाने जाने बीस वाद्य।

" ध्वनियाँ कितनी तरह तरह की इस्तेमाल हुई है। बीजाक्षरी मंत्रों का उद्देश्य, ध्वनियों के बीच नाट्य प्रभाव को तीव्र और गहन बनाने के लिये भी है। ये बीजाक्षर है, और ध्वनि भी। "[15]

नाटक की शुरूआत ही बीजाक्षरों से शुरू होती है। जैसे -

" हे हउ हिं क्रिं

हे हउ हिं क्रिं "[16] आदि

तथा नाटक में रूपक खेला जा रहा है उसमें मृग के आवाज निकाले है -

" ए.....औंउ

एं.....औंउ

एं.....औंउ

एं.....औंउ '[17] आदि।

डॉ. लाल ने अपने इस नाटक में संगीत को ध्वनि के उच्चारण को बहुत महत्व प्रदान किया है। इसका पूरा वातावरण कर्मकाण्ड जैसा उभरकर आया है। इस नाटक की संरचना ही संगीत के भीतर है। बासुरी का मधुर स्वर भी उभरा है। बीच बीच में मेटलिक और कृष्ठ स्वर भी उठते हैं। इस नाटक के कार्य की गति ही नाटक का प्राण है, यह प्राण संगीत पर निर्भर है। कलंकी-नृत्य तथा कलंकी-संगीत इस नाटक की हैसीयत है। यह स्वर तथा संगीत सहजता मे व्यवधान डालता है।

डॉ. लाल का नाटक ' मिस्टर अभिमन्यु ' दो अंकों का है। इस नाटक में भी प्रकाश-योजना का विशेष रूप उभकर आया है। दृश्यबंध के तुरन्त बाद दर्शकों पर से प्रभाव बुझते ही राजन पर आता है। फिर नाटक की शुरूआत होती है। पहला दृश्य समाप्त होते समय भी राजनपर से भी प्रकाश बुझता है। दूसरा दृश्य संध्या समय का है याने रोशनी में लालिमा की आवश्यकता महसूस होती है। दूसरे अंक के पहले दृश्य में दूसरे दिन का समय है याने रोशनी तेज होनी चाहिये। इस दृश्य के बीच में भी राजन तथा विमल के वार्तालाप के दरम्यान मंच का सारा प्रकाश राजन पर टिक जाता है और अंध:कार से आत्मन प्रकट होता है। यहाँ पर दृश्य बदला नही होता, परंतु प्रकाश की मर्यादा ठहर जाती है। फिर थोड़े वार्तालाप बाद - आत्मन की हत्या के बाद - मंच पर से प्रकाश बुझ जाता है, जैसे ही लौटता है मंचपर बहुत कम प्रकाश है, जैसे रात का पहला पहर हो। नाटक के अंत में प्रकाश बुझता नही, पर्दा गिरता है।

ध्वनिसंकेत में भी मिस्टर अभिमन्यु का संगीत स्वतंत्र है। जिसप्रकार कलंकी का अपना अलग संगीत है उसीप्रकार इस नाटक का भी अपना अलग संगीत है। पहले दृश्य में ही प्रकाश बुझने के साथ यह संगीत उभरता है। इसमें फोन की घंटी के आवाज, टेपरिकार्डर की आवाज, टाईपरायटर की आवाज आदि का भी प्रयोग किया है। लौहतरंग की भी आवाज उठायी गयी है। तथा पिस्तुल की गोली

चलाने की आवाज सुनाई देती है। इसप्रकार नाटक में कई प्रकार की आवाज, ध्वनिसंकेत में उभरी है। जैसे - " भयभीत राजन की आँखे फिर बन्द हो जाती है। वे दोना (आत्मन, गयादत्त) आदृश्य हो जाते हैं। राजन तेजी से बाहर चले जाते हैं। एक क्षण के लिये मंचपर अंधःकार छा जाता है। जब प्रकाश लौटता है - विमल भीतर से निकलती है, जैसे किसी को ढूँढ रही है। "[18]

इसप्रकार प्रकाश तथा ध्वनिसंकेत इस नाटक में बहुत ही महत्वपुर्ण रूप से उभरकर आये हैं।

डॉ. लाल का नाटक ' एक सत्य हरिश्चंद्र ' में भी प्रकाश का विशेष रूप में महत्व नही दिखाई देता है। यह नाटक एक अंक वाला है, परंतु इसमें सात दृश्य दृश्यित किये गये हैं। पूरा नाटक दिन के समय में घटित होता है इसलिये रंगदीपन अर्थहीन हो गया है। ध्वनिसंकेत के बारे में इस नाटक की चर्चा की जा सकती है। गाना - संगीत नृत्य आदि से। गाने के समय बहुत लोगों की आवाज एकत्रित होना, उससे कोलाहल तथा एक ही समय में बहुत लोगों का बोलना या उनका स्वर झगड़े जैसा होना आदि। सत्यनारायण की पूजा समाप्त होते ही आरती के साथ घण्टी बजना, आरती उतारना, गाने का संगीत आदि। इस नाटक में नृत्य तथा संगीत का प्राधान्य रहा है। नाटक का एक पात्र रंगा जो हर समय गाता रहता है। चरवाहा बांसुरी बजाता है। काशी की पतुरिया का कोठा है जिसमें नृत्य तथा संगीत उभरता है।

नाटयभाषा तथा संवादयोजना :

भरतमुनि के नाट्य शास्त्रानुसार नाटक के तत्वों में नाट्यभाषा तथा संवादयोजना तत्व नही है। उनके मतानुसार वृत्ति ही नाट्यशैली है और नाट्यशैली के अंतर्गत नाट्यभाषा तथा संवादयोजना निहित रहते हैं। नाटक की भाषा शिष्ट लोगों की भाषा होती है। परंतु कभी कभी उसमें बोली भाषा का भी उपयोग किया जाता है। बोली भाषा को सौष्ठव प्रदान करके उसका नाटक में उपयोग किया जा सकता है। भाषा स्वाभाविक होना आवश्यक है। नाटक की भाषा पात्रों के अनुकूल होनी चाहिये। नाटककार की कुशलता भाषाद्वारा ही सिद्ध होती है। नाट्य-भाषा में कई प्रकार किये जा सकते हैं। जैसे - पात्रानुकूल भाषा-शैली, प्रश्नार्थक, बिंबात्मक पूर्वदीप्ति पूर्ण भाषा शैली तथा शीर्षक के अभिनव प्रयोग।

पात्रानुकूल नाट्यभाषा :

डॉ. लाल ने अपने नाटकों में पात्रानुकूल भाषाशैली अपनायी है। उनका नाटक ' सूर्यमुख '

में पात्रानुकूल भाषाशैली है। जैसे - नाटक के भिखारी लोग अशुद्ध भाषा बोलते हैं।

" हारिक : ए हो पतोसा। मो कही, बड़ी बेर है गई।

देवव्रत : हां हां सांझ है गई तो लड्डू फोडो।

विलोभन: आजु चारो ओर बड़ो सूनो लगि रहो।

विदूरथ : राजा मृत्युशय्या प्रजा भूमिशय्या। "[19]

प्रद्युम्न तथा वेनुरती, रूक्मिनी, द्वारपाल तथा व्यासपुत्र आदि की भाषा शुद्ध दिखाई पड़ती है।

उनका नाटक ' यक्षप्रश्न ' तथा ' उत्तरयुद्ध ' में भी भाषा पात्रानुकूल है। उत्तरयुद्ध का पात्र विदूषक भी अशुद्ध भाषा में कभी कभी बोलता है। जैसे - " विदूषक : (दर्शकों से) दुहाई । गोहार लायो गोहार। समझाओ इन्हें। पर कौन समझाये। कौन लगे इन के मुँह ? कौन कहे आपन कपार तोडवाए। अभी से जब इनकी यह हालत है। अरे सुनिए तो। क्षमा क्षमा। "[20]

संवाद योजना को कथोपकथन भी कहा जाता है। इस नाटक की संवादशैली काव्यात्मक, बिंबात्मक तथा प्रतीकात्मक कही जा सकती है। जैसे वेनुरती अंत में प्रद्युम्न से कहती है - " यह देखो, मेरी बाहों में तुम्हारे शरीर का पराग, यह देखो, मेरी आँखों में तुम्हारे सूक्ष्म का विप्रलम्भ। देखो मेरे वक्ष पर तुम्हारे ये आघात - वहीं कमल इन गहराईयों में तैरता है, जिसके पराग कोश में बीजली है - आँधी है। तुम्हारे केतु की वह मछली पंख फैलाए खड़ी है, आओ, हम इसे पकड़ ले। "[21]

वेनुरती की यह काव्यात्मक संवाद शैली दृष्टव्य है और " जरा और प्रद्युम्न के बीच चलनेवाला संवाद गुम्फित बिंबात्मकता को प्रस्तुत करता है -

जरा : हाँ, मुझे याद आता है, मरते समय कृष्ण ने वेनुरती का नाम लिया था, कहा था - वेनुरती मेरी अंतीम रानी - मेरा अंतीम प्रेम ....

प्रद्युम्न : अंतिम प्रेम ?

जरा : मेरा बाण लगते ही कृष्ण चीत्कार कर उठे। अपना पिताम्बर फाड़ डाला। बांसुरी फेंक कर मुझे मारा और वह भयानक आवेश में मेरी ओर दौड़े। मैं वृक्ष के एक झुरमुट में छिप गया। और देखने लगा उनकी आंखों से आग की लपटे निकल रही है। वह हाहा:कार करते हुए कुछ बोल रहे हैं। "[22]

इसप्रकार नाटक के संघर्ष अन्ततः एकपूर्ण बिंब बनकर सामान्यीकृत बन जाते हैं। नाटक के प्रतीकों की जीवन शक्ति बढ़कर बिंबोंद्वारा हमारे सामान्य जीवनपर छा जाते हैं।

डॉ. लाल ने सूर्यमुख की भाषा तथा संवादों में समानान्तरता तथा सादृष्य विधान इसप्रकार किया है -

" पहला भिखारी : मैं अपनी इस धरती का कृषक हूँ। मुझे मेरी डूबी हुई धरती दो।

दूसरा भिखारी : मैं इस नगर का स्वर्णकार हूँ, मुझे मेरा घरद्वार दो।

तीसरा भिखारी : मैं इस शिल्पी हूँ इस नगर का - मुझे मेरी आँखे दो। "[23]

डॉ. लाल ने इस संवादशैली में साहित्य विधान का विशिष्ठ प्रयोग किया है।

यक्षप्रश्न, उत्तरयुद्ध :

डॉ. लाल का नाटक यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध की नाट्यभाषा व्यंगात्मक एवं प्रश्नार्थक है। उत्तरयुद्ध का विदूषक पांचो पांडवों पर गहरा व्यंग्य करता है। जैसे विदूषक -

" विदूषक : महाराज, छोटे मुँह बड़ी बात है। क्षमा करे। इर्ष्या और फूट तो तब पडती है, जब शक्ति को एक आदमी हथिया लेता है, बाकी लोग देखते रह जाते हैं, टुकुर टुकुर "[24]

तथा

" जो अशांत है, वही कहता है शांत। जो चीज जहां नहीं होती, वहीं याद की जाती है। "[25]

यक्षप्रश्न की भाषाशैली - संवादशैली प्रश्नार्थक है, जैसे -

" यक्ष : आशीर्वाद क्या है ?

युधिष्ठिर : सब का कल्याण।

यक्ष : सब क्या है ?

युधिष्ठिर : सब मैं ही हूँ। मैं ही सब हूँ।

यक्ष : शक्ति क्या है ?

युधिष्ठिर : सब का काल चुनौती से संघर्ष। "[26]

उत्तरयुद्ध का विदूषक पुराणकाल का न लगकर बिलकुल आधुनिक पात्र लगता है। उनमें जो सम-सामायिक तत्व है, जिसके आधारपर प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से कथ्य की व्यंजना करते हैं। गोविंद चातक जी के शब्दों में -

" उत्तरयुद्ध में भाषिक प्रयोग के कारण ही विदूषक अतीत से उतरकर वर्तमान का साक्षी बन जाता है। अतीत और वर्तमान का यह प्रत्यावर्तन भाषा के स्तर पर भावात्मक परिवेश निर्मित नहीं कर पाता। उससे भाषा की रूढ़ि तो टूटती हैं, समसामयिक सन्दर्भ भी उजागर होते हैं, किंतु पाठक। प्रेक्षक

अतीत और वर्तमान में बँट जाता है। "[27]

विदूषक अतीत तथा पात्रों का समन्वय करके सत्योद्घाटन करता है और आधुनिक भाषा को प्रस्तुत करता है।

डॉ. लाल का नाटक ' नरसिंह कथा ' के संवाद प्रभावपूर्ण एवं भाषाशैली भी प्रभावपूर्ण है। यह नाटक, नाटक के अन्दर नाटक की शैली में खेला गया है। इसकी भाषा सत्याभाषी तथा प्रखर है। जैसे - " विदूषक - शी ऽऽऽ । गुप्त मंत्रणा हो रही है। कोई विघ्न बाधा नहीं। देखिये बकबक बकबक करनेवाले चापलूस, मसखरे भी गम्भीर हो गये हैं। ज्योतिषी घबड़ा गया है, कही उसकी नौकरी न चली जाय। कवि भयभीत है। उसे डर है - कोई दूसरा राजकवि न आ जाय दरबार में। हर आदमी दूसरे से ड़रता है। किसी को किसी पर विश्वास नहीं है, मतलब यह कि किसी को आत्मविश्वास नही है। यहाँ पर की हमारे महाराजाधिराज को भी .... शी ऽऽऽ । कोई सुनने न पाय। चारों ओर गुप्तचरों के जाल बिछे हैं। "[28]

सत्याभास प्रकट करने के लिये नाटक में जय-विजय पात्र है। जो हर समय वार्तालाप द्वारा इस बात का उद्घाटन करते हैं। प्रल्हाद तथा हिरण्यकशिपु के विरोधाभास संवादद्वारा दोनों के मन में फर्क तथा दोनों के आचार में फर्क दर्शाया गया है।

" हिरण्यकशिपु : चल तेरे सब पाप दूर कर दूँ।

प्रल्हाद : हे प्रकाश ! तुझमें तेरा अविर्भाव नहीं हुआ।

हिरण्यकशिपु : अभागे। मैं जगत में प्रकाशित हूँ।

प्रल्हाद : न मिलने का यह दुख केवल मेरा ही नही, वह अनंत में व्याप्त हो गया।

हिरण्यकशिपु : अपने ईश्वर को पुकार। वह आयें तुझे बचा ले।

प्रल्हाद : हे रूद्र। हे परमदुःख। हे विच्छेदवेदना। तुम्हारी, कैसी मूर्ति सामने आती है। "[29]

एक निरंकुश तानाशाह तथा बर्बर राजा के विरोध में सहज, सरल, प्रेममय तथा साधनाहीन को प्रस्तुत किया है। मानव का विकासात्मक रूप हुताशन के रूप में प्रस्तुत करके नाटककार ने नए मूल्य स्थापित किये हैं। व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा व्यक्ति प्रेम समाज के द्वारा राष्ट्र में फैलाता है तब मंगलमय हो जाता है।

दयाशंकर दुबे के अनुसार ' नरसिंह कथा की भाषा भाव सम्प्रेषण में सक्षम है। दुरूहता का आरोप उसपर नहीं लगाया जा सकता है। जैसे पात्र है वहीं वैसी ही भाषा का प्रयोग सहज और स्वाभाविक माना जाता है। प्रस्तुत नाटक में यही हुआ है। '[30]

गोविंद चातक जी लिखते हैं - ' नरसिंह कथा के ' घुस पैठिए ', पहचान पत्र,' 'प्रवेश पत्र,' 'अनुमति पत्र,' 'केन्द्रिय गुप्तचर विभाग' ' अलगाव ' जैसे आज के पारिभाषिक या सन्दर्भगर्भित शब्दों का प्रयोग विलक्षणसा लगता है। '[31] तथा आगे तुकान्तता का विशिष्ट प्रयोग भी बताते हैं।

महानिरीक्षक : हमारे अधिकारी निरीक्षण करते रहें - ये जिस तरह व्यवहार करते रहें ..।

महारक्षक : आचार-विचार करते रहे।

कवि : हाहा:कार करते रहें।

शकुनि : हत्या को अस्वीकार करते रहे।

शम्बर : पकडते ही चीत्कार करते रहे ...। "[32]

कलंकी -

'कलंकी' की भाषाशैली तथा सम्वाद गूढ है जिनका अर्थ तत्काल समझ में नहीं आता। जैसे-

"हेरूप - यह शव कब जीवित मनुष्य के भाँति बाते करेगा?

तांत्रिक - औधे पडे हुए शव का मुख जब साधक की ओर घूम जायेग।

हेरूप - (स्वप्न देखता-सा) हाँ यथार्थ को यदि बदला जा सकता है तो केवल उसका सामना करके ही। जब औधा पडा मुख सामने आएगा।"[33]

तथा

"तारा - वही हेरूप बंदी आत्माओं को मुक्त करेगा। (दोनो स्त्रिया भयभीत है।)

तारा- वह नही आया तो शव भरे ये द्वार नहीं खुलेंगे।"[34]

इस नाटक के पात्र अंध:विश्वासी तथा अनपढ है परंतु हेरूप उन्हे इस परिवेश से बाहर निकालना चाहता है। नाट्यभाषा तथा संवादयोजना द्वारा नाटक के बहुत से भेद तथा रहस्य खुल जाते है परंतु उसका कोई असर अंधविश्वासी जनतापर नही होता - जैसे -

"हेरूप - मैं अकुलक्षेम का पुत्र हूं, यह सच्चाई तुम में क्रोध नही पैदा करती।

पहला कृषक- अकुलक्षेम अंतमें हमारे लिये लड़ा था।

हेरूप - नही केवल अपने लिये।

दूसरा कृषक- हमने सारा अधिकार उसे सौंप दिया था।"[35]

नाटक के संवादो से हेरूप तथा अवधूत और हेरूप तथा तांत्रिक के दरम्यान संघर्ष चलता रहा है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्रानुसार जो बाते रंगमंचपर नही दर्शायी जाती उसका संवादोद्वारा उद्घाटन किया गया है। जैसे हेरूप की हत्या का वर्णन दूसरा कृषक अपनी जुबान से बताता है।

तिसरा कृषक- वही बोधिसत्व कथा। सब मृग बोधिसत्व थे। सब एक समान थे। सब उसी जैतवन में विहार करते थे। रास्तेभर हेरूप मुझे वही कथा सुनाता जा रहा था, विक्रम विहार के द्वारपर मुझे एकांत में ले जाकर हेरूप ने कहा, 'तुम भी वही बोधिसत्व हो।' बस इतना कहकर हेरूप विक्रम-विहार में चला गया। मैं सूर्यास्त होनेतक वही बैठा रहा, फिर मुझे सूचना मिली, हेरूप को प्राणदण्ड दिया गया।"[36]

रंगमंच पर भोजन, शयन, मृत्यू आदि दृश्य वर्जित माने गये है इसलिये यह दृश्य भी प्रत्यक्ष हत्या न दिखाकर किसी पात्र के संवाद द्वारा ही दिखाया गया है।

"कलंकी में मिथकीय वातावरण की प्रस्तुति के लिए पुराबिम्बो, ध्वनिबिम्बो, उध्दरण वाक्यों, विस्मयबोधकों, और पुनः पुनः दुहराये जाने वाले संवाद वाक्यों का प्रयोग हुआ है जिससे भाषिक गठन में अतिप्राकृत तत्व की सिध्दि हुई है। उसमें अस्पष्ट, अस्फुट, अप्रकट अर्ध प्रकट वाक्य मंत्रपूर्ण ध्वनियों को गढते है।"[37]

डॉ. लाल ने कलंकी में गद्य वाक्यों को काव्यात्मक, वाक्य-विन्यास प्रदान करके काव्य का आभास निर्माण किया है, वास्तव में ये वाक्य या पक्तियाँ काव्य पक्तियाँ कहलाने योग्य नही है। केवल काव्य की भासमानता पैदा की है।

मिस्टर अभिमन्यु -

मिस्टर अभिमन्यु की भाषाशैली में अंग्रेजी शब्दप्रयोग ज्यादा हुए है तथा टेलिफोन पर बातचीत, टेपरिकार्डर का आवाज आदि से सम्पृक्त है। इसमें अंग्रेजी शब्दों की भरमार है। जैसे - आई.ए.एस., कलक्टर, डिस्ट्रिट मॅजिस्ट्रट, बाई एलेक्शन, इम्पार्टमेंट कमिश्नरी, जनरल इलेक्शन, केस, फायर आर्म्स, टैक्स, रिजाइन, फ्युचर, पॉलिटिक्स, लेबर लीडर, टिअर गॅस, लग्जरी, शॉर्टकट, कम्पलीट रेस्ट, सिरियसली, कॉटन मिल, फुल कॅबिनेट डिझाइन, स्टेनो, प्रॉपर्टी डीलर, मॉडेल, ट्रंककॉल, पॉलिसी,

बॅंकएकाउट, चीफ सेक्रेटरी, सीक्रेट ऑर्डर, रिजिग्नेशन, रेड, इम्पर्टिन्स, एन्वायरमेंटस, इन्वेंशन, लीकआउट, बुफे सिस्टम, रोमांस, फ्रस्ट कजिन, रेंज, इनफैक्ट, ब्रेड, पैक, कोर्ठ, डिनर, फेअरवेल, स्टे-ऑर्डर, टयूटर, एसेसमेंट, पेटीयन, शट्अप, आइडिया, चार्ज सर्टिफिकेट, फार्म, नानसेंस, फोक सांग आदि। कहीं कहीं पर पूर्ण रूपसे अंग्रेजी शब्द भाष्य दिखाई दिया है -

"आत्मन-क्रांति ... इन्फैक्ट आई फील, मैन हैज कम टू सी हिमसेल्फ, नाट एज ए फ्री, बट एज डिटरमिन्ड। नाट एज ए मूवर, बट एज मूव्ड। ही इज लाईक ए ब्लाईण्ड फंगस, कास्मिक वेस्ट ऑफ मॅटर।"[38]

नाटक में टेलिफोन पर संवाद बोले गये है जैसे -

राजन - (फोन करते है) एस.पी. साहब को देना ... मिस्टर राठौर, वह हरिजन की बस्तीवाले मामले में क्या हुआ? हूं...हूं नियाहत सक्ती से काम लीजिये। ब्राम्हणों ने उनकी बस्ती फुकवाई है ... कोई दलील नही। सबको हिरासत में लीजिये ।"

दूसरा फोन भी वार्तालाप द्वारा करते हैं। यह संवाद दीर्घातरी शैली में बोले गये है। राजन की पत्नी विमल भी एक जगह फोन पर बाते करती है। इसस नाटक संवाद दीर्घात्तरी, कामेंटरी तथा आत्मसंघर्ष निर्भर रहते है।

इसमें एकालाप की भाषाशैली अपनाई है, राजन अपने आप से वार्तालाप करता है जो कि प्रश्न, उत्तर या निरंतर संवाद हो रहा है। जिससे आत्मसंघर्ष की झलक दिखाई दे रही है -

"राजन - चुप रह, बेशर्म।

राजन - लोग यही कहेंगे तुझे।

राजन - तेरी जबान खीच लूंगा।

राजन - तू आगे कुछ नही बोल सकेगा।

राजन - तू यहाँ से चला जा।"[39]

" 'मिस्टर अभिमन्यु' के कतिपय संवाद समसामयिक यथार्थ के दर्पन के रूप में हिंदी के व्यवसायिक रंगमंच से (यदि कभी ऐसा रंगमंच विकसित हो सकता) दर्शकों की तालियाँ और 'वाह-वाह' प्रदान कर सकते है।"[40]

एक सत्य हरिश्चंद्र -

डॉ. लाल का नाटक 'एक सत्य हरिश्चंद्र' की भाषा ठाठ देहाती नहीं कही जा सकती, परंतु कहीं कहीं पर उसका प्रयोग हुआ है। गोविंद चातक जी का कथन द्रुष्टव्य है।

"एक सत्य हरिश्चंद्र में भाषा आंचलिक और लोक तात्विक तत्व से परिपूर्ण है। किंतु कई बार इस नाटक को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे भारतेंदु युग का कोई नाटक पढ़ रहे हों।"[41]

गवार भाषा का प्रयोग इसलिये किया गया है कि गांव के अछुत लोग नाटक में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। गांव का मुखिया देवधर अपने चमचों पर छा गया है - जैसे -

"गपोले - यह क्रांती की बात करता है, और नहीं तो क्या?

जीतन - भई पहले अपना चेहरा तो जाकर देख।

देवधर - क्रांती करेंगे। उसके लिए बड़ी ताकद चाहिये। पूरी व्यवस्था चाहिये। वह काम मेरी पार्टी कर सकती है। मैं कर सकता हूं।"[42]

लौका के मन में देवधर के प्रति प्रतिशोध की भावना है। वह एक अछूत युवक है, उसके मन में विद्रोह की भावन जागृत होती है। वह अपने साथ-साथ अपने बस्ती को जागृत करता है। उनको उनके अधिकार दिलाने की कोशिश करता है। तथा उनको उनका हक प्रदान करता है, गांववालों को समझाता है -

"लौका - पंचो! आप सबने बडे ध्यान से भक्ति से सत्यनारायण की कथा सुनी। यही कथा हमारे बाप-दादा, बाबा, परबाबा सुनते चले आ रहे है। इसमें कही हुई सारी कथाएँ हमे यह बताती है, जो नाना प्रकार की विपत्तियों को प्राप्त होता है। पंचो, लेकिन यह कोई नहीं सुनाता कि, वह सत्यनारायण की कथा क्या है? जैसे अब तक हमे सिर्फ यह बताया गया है कि अपने से बडों का विरोध करने से क्या दंड मिलता है, पर कभी यह नही बताया गया कि विरोध क्या है?"[43]

यह संवाद उपदेशात्मक तथा दिर्घोत्तरी है। इसप्रकार नाटक में आंचलिक भाषा तथा दिर्घोत्तरी संवाद, आत्मसाक्षात्कारी संवाद जैसे भरे पडे है। नाटक का पात्र जीतन को आत्मसाक्षात्कार, सत्य का दर्शन होता है। वह कहता है - जबसे विश्वामित्र के चरित्र में पैठता जा रहा हूं अपने आप से आमने सामने होता जा रहा हूं। संवाद योजना परिणामकारक तथा प्रभावात्मक है।

"लोक-नाट्य की शैली के अनुरूप इस नाटक में कोरस-गीत, फिल्मी-गीत, दोहों तथा बहरों का प्रयोग

किया गया है। रोचकता एवं जन-रूचि को ध्यानमें रखकर प्रचलित फिल्मी गीत भी रख गये हैं। '[44] उपर्युक्त भाषा वैशिष्टय संवाद शैली को देखने के उपरान्त गोविंद चातक जी का कथन दृष्टव्य है। डॉ. लाल की भाषिक और संवादीय संरचना का सशक्त माध्यम आयाम उनके मिथकीय नाटकों में उजागर हुआ है। इनमें उन्होंने युगीन समस्याओं को मिथकों के माध्यम से व्यंजित करने का प्रयास किया है। इस आग्रह के पिछे यह विचार मुख्य है कि प्राचीन होने पर भी मिथक समकालीन जीवंतता से युक्त होते हैं और वे सामाजिक यथार्थ को कई रूपों, कई आयामों में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। "[45]

नाटक की भाषा की एक विशिष्टता यह है कि वह प्रयोगात्मक होनी चाहिये। क्योंकि, नाटक मंचपर खेला जाता है, अन्तः नाट्यानुकूल भाषा प्रयोगात्मक भाषा नाटक में अपेक्षित ही है। इसमें संदेह नहीं कि, डॉ. लाल की भाषा प्रयोगात्मक हैं। गोविंद चातक के शब्दों में - " लाल की महत्ता उनकी भाषिक क्षमता में नहीं, भाषिक प्रयोग में है। भाषा की सायास खोज उनके सभी नाटकों में मिलती है। मिथक अथवा लोकतत्वयुक्त नाटकों और समसामयिक विसंगतियों को उजागर करनेवाले नाटकों में इसे विशेष रूप से देखा जा सकता है। "[46]

नाटककार द्वारा दिये गये रंगसंकेत :

रंगसंकेत का अर्थ असीमित है। इसके अंतर्गत निर्देशन, अभिनय, प्रकाश, ध्वनि, पर्दा, दृश्यबंध, रंगदीपन, संवाद योजना, दृश्यबदल आदि के बारे में दिये गये संकेत ही रंगसंकेत हैं। सामान्यतया नाटक रंगमंचपर प्रस्तुत होते समय उपर्युक्त बातोंपर विचार किया जाता है। कभी,कभी नाटककार खुद उपर्युक्त बातों पर विचार करके सुचना देता है।

' सुर्यमुख ' नाटक का संवेदन, वस्तुपरख एवं बहुआयामी होने के कारण जीवन सन्दर्भों के रहस्योद्घाटन में नाटककार बहुत ही सजग रहे हैं। इस नाटक का मूल उद्देश्य है विशिष्टता से सामान्य की ओर ले जाना।" नाटककार ने इस नाटक में जो रंगसंकेत दिये हैं, उनसे रंगसमीक्षक, निर्देशक दर्शक एवं नाटक के लिये असंतोष ही पैदा हुआ है, तो हिन्दी नाटक के लिये शुभ कहा जा सकता है। "[47] रचना के मूलबिम्ब को साकार करने के लिये नाटककार ने जो साधन अपनाए हैं वे संघर्षी प्रकृति के है। नाटक में युद्ध उभारा गया है पर प्रायश्चित् रूप में। नाटक में जो विरोध दर्शाया है वह सामान्यीकरण हो सकता है , परंतु प्रद्युम्न-वेनुरती का मूलबिंब विशिष्ट रूप में नजर आता है। इस नाटक का काल-पुराणकाल दर्शाकर और भी प्रश्न उपस्थित हो गये हैं - आधुनिक समाज में यह बात

प्रद्युम्न वेनुरती का प्यार सफल हो सकता था, पर पुरान काल में नही।

' यक्षप्रश्न ' तथा ' उत्तरयुद्ध ' का काल भी पुराणकाल दर्शाया गया है। ये दोनों नाटक अलग-अलग तथा स्वतंत्र होनेपर भी सम्पूर्ण नाटक है। उनका स्तर काव्यमय है तथा संगीतमय है। दोनों नाटक एकही सूत्र में बांधे गये हैं। नाटक का गौरव ही रंगमंच का गौरव है। इस नाटक का आत्मविश्वास अनोखा है।

" इसका गौरव इसकी सहजता है। इसमें कही से कोई जटिलता नहीं है। तभी तो यह इतना सक्षम है। इसका यथार्थ काव्य का है। यह काव्य जो हमारे जीवन है। वह जीवन जो सतत प्रश्नकर्ता काल यक्ष के समान है। "[48] उत्तरयुद्ध में समय अनादिकाल से होकर आजतक है तो मंचपर केवल पांच पांडव चुपचाप बैठे है और केवल संवादोंद्वारा पूरे नाटक का रहस्योद्घाटन करती है। यक्षप्रश्न में भी यक्षप्रन में भी रंगमंचपर वार्तालाप ही है। यक्षप्रश्न का समय केवल अनादिकाल है, परंतु नाटक के प्रश्न बिलकूल आज के हैं।

उनका नाटक ' नरसिंह कथा ' का काल भी पुराण काल है, परंतु नाटक के अन्दर नाटक जो खेला गया है उसमें इसकी रंगप्रणाली विशिष्ट रूप से उभरकर सामने आयी है। हिरण्यकशिपु के घडे से शादी के समय जो दृश्यबंध अपनाया गया है, वह नाटककार के ज्ञान का उद्घाटन करता है। नाटक के अन्त में हुताशन तथा हिरण्यकशिपु का युद्ध नृत्य के रूप में प्रस्तुत करके अनोखापन ही पैदा किया है। हिरण्यकशिपु की मौत तथा सामान्य जनता का आनंदित होकर गाना और भी मुखर हो उठा है।

' कलंकी ' का वातावरण अनोखा निर्माण किया है। कलंकी के लोगों में केवल अस्तित्वबोध पर जीवित है उन्हें जीवनबोध का स्पर्श नहीं। उन्हें प्रश्नहीन बनाकर अवधूत उनपर छा गया है। " अभिव्यक्ति जितनी संकुल तथा गहन होती है, उसके रचनाकार को उसके सार्थक रूपायन का प्रश्न समानान्तर चलेन के कारण अन्योन्याश्रित रूप में ही उपस्थित होता है। यह प्रश्न मेरे समक्ष जब आया तो बहुत समय तक मन में ' कलंकी ' का रंगमंच अनेक रूपों में रंगमंच भरता हुआ घूमता रहा और इसके लिये प्रत्येक स्थापित रंगरूप कहीं न कहीं कच्चा लगाता। "[49] नाटक का प्रकाशन सहजधारा में बहता है, परंतु सहसा तांत्रिक के मंत्रोच्चारण से इसमें व्यवधान पड़ता है। उच्च कोटि का अभिनेता की इस व्यवधान में एक क्षण के लिये दिग्भ्रांत हो जाता है। नाट्यसमूहन गतिसंचार में भी इससे बाधा पड़ती है। नाटक का पहला दृश्य दूसरे दृश्य का सूत्रपात करता है। तथा उचित अनुक्रम

रखता है।

डॉ. लाल ने ' मिस्टर अभिमन्यु ' द्वारा राजन का जो अंत:संघर्ष को उठाया है वह आज के व्यक्ति का अंतरसंवर्ष है। कहीपर फँटसी का भी इस्तेमाल किया है। अभिमन्यु के चक्रव्यूह को हिंदुस्तानी जिंदगी की त्रासदी को और गहरा कर दिया है। नाटक के संवाद के पिछे एक बेचैनी संकर तथा उत्सुकता उभकर आयी है। नाटक के प्रश्न पूरे समाज के प्रश्न है। भारत की मौजूरा समाज व्यवस्था का रूपांकन उचित ढ़ंग से किया हो।

" पौराणिक चरित्र को नये मंचपर पेश करना अपने-आप में एक चमत्कारिक कृत्य हो सकता है, मगर किसी पौराणिक चरित्र के मूल अर्थ को एक नये सन्दर्भ में रखकर अपने समय की विडम्बना को उद्घाटित करना ज्यादा कठिन काम है। "[50]

नाटककार ने इसे भी कलंकी की तरह स्वतंत्र तथा विशेष संगीत योजना अपनाई है। अभिनय की सधनता भी पूर्ण रूप से अपनाई गयी है। अभिनेता का सम्पूर्ण अखिल भाग-भंगिमा तथा अंग संचालन की परिधि से उपर उठकर उभारा गया है।

' एक सत्य हरिश्चंद्र ' नाटक के रूपबंध का आकार संस्कृत नाटकों जैसा है। नाटक को आधुनिक धरातल पर प्रस्तुत करके उन्होंने अपनी परंपरा निभायी है। पाल जेकब लिखते है - " उदहरण के लिये संस्कृत नाट्य का बुनियादी तत्व है गोलाई, वृत्ताकार घूमना, संस्कृत नाटक के इस आधार को लाल ने ज्यों का त्यों, बिना कुछ तोडे-मरोडे, (मतलब प्रयोग किये) अपने ' एक सत्य हरिश्चंद्र ' के नाट्य में परम सृजनात्मक ढ़ंग से प्रयुक्त किया है। "[51]

निर्देशक के विचार :

डॉ. लाल ने अपने कुछ नाटकों का निर्देशन खुद किया है, तथा अन्य निर्देशक के नाम इसप्रकार है -

नाटक के नाम	निर्देशक के नाम
सूर्यमुख	ई. अल्काजी - प्रस्तुतकर्ता।
यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध	नान ग्रप
नरसिंह कथा	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
कलंकी	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
मिस्टर अभिमन्यु	वीरेंद्र नारायण
एक सत्य हरिश्चंद्र	एम्.के.रैना।

निर्देशक एक जिम्मेदार व्यक्ति माना जाता है। निर्देशक कभी कभार ही अभिनेता होता है, परंतु वह अत्यंत कलापूर्ण रूप में प्रस्तुत होता है। अन्य कलाओं को जानने, समझने तथा परखने की क्षमता इसमें होती है। निर्देशक को शांत, स्वच्छ तथा मधुरभावी होना आवश्यक है। निर्देशक का संबंध दर्शकों से समक्ष नहीं होता परंतु नाटक के पात्रों के साथ समक्ष संबंध जरूर होता है। तथा रंगमंच के अन्य विधाओं से भी संबंध रहता है। निर्देशक को अभिनेता तथा नाटक के अन्य कर्मचारियों से सहयोग लेना पड़ता है। निर्देशक को शीघ्रकोपी नहीं होना चाहिये उसे वक्त की पाबंदी का खयाल रखना पड़ता है।

' सूर्यमुख ' का कथन दृष्टव्य है -

" नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की प्रस्तुती में प्रख्यात निर्देशक इ.अल्काजी ने अपने निर्देशन में ' सूर्यमुख ' का जो प्रदर्शन किया है, वहां अपने मंच-स्वरूप में यह अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ है। पाठ्य पुस्तक से रंगमंच तक जो इसके आयाम फैले है, वही वस्तुतः सूर्यमुख है। इसका अभिनय-आयाम इसका काव्य-आयाम है। और काव्य-आयाम ही इसकी आधुनिकता और शक्ति है। दृश्यात्मकता ही इसका मूल आधार है। वह दृश्यतत्व इसके पाठ-तत्व में परिव्याप्त है, वही इसका मूलरस है। "[52]

यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध के निर्देशक नानग्रुप का कथन देखते हैं -

" हमने ' एरिना मंच ' पर इनकी प्रस्तुति करके पाया कि सहजता में भी इसकी शक्ति है। वह शक्ति जो इस प्रदर्शन में प्रकट हुयी उसे अनुकूल कर हम कृतकृत्य हो। अभिनय में बोले जाने वाले शब्दोंपर ही हमने आग्रह किया और सारा बल संवादों के अभिनयपर दिया, जिसका फल आश्चर्यजनक था। "[53]

इसके मंच की कल्पना अद्भुत थी - बीच में इसका मंच और चारो ओर दर्शक। इसकी प्रस्तुतीकरण की यही मांग थी। इसकी प्रस्तुती गत्यात्मक, सरल, सहज तथा सीधी दर्शकों के हृदय को छूनेवाली प्रतीत हुयी। यह नाटक बहुत ही सक्षम, गौरवान्वित, यथार्थ, आत्मविश्वासी, आधुनिक और काव्यरूपी जीवन है। नान ग्रुप के रंगकर्मी नाटककार के प्रति ऋणी है।

डॉ. लाल ने अपने नाटक ' नरसिंह कथा ' का भी निर्देशन किया है। निर्देशकीय दृष्टी से उनका विशेष महत्वपूर्ण कथन नहीं है। केवल नाटक के चरित्र के बारे में इतना कथन है कि, हिरण्यकशिपु तथा प्रल्हाद का चरित्र उन्हें अत्यंत अर्थवान लगा। इन दो चरित्रों के अतिरिक्त अत्याधिक

नाट्य गर्भित लगा नरसिंह का स्वरूप। नाटक के पात्र जय-विजय द्वारा नाटक का उद्दिष्ट सामने आता है। पुराना नाटक दर्शकों को पसन्द आता है या नहीं इस शंका से वे भयभीत होकर नाटक प्रस्तुत करने से डरते हैं।

' कलंकी ' भी डॉ. लाल ने निर्देशित किया है। उन्होंने अपने इस नाटक के बारे में लिखा है -

" मैंने स्वयं पहली बार अपने इस नाटक को खेला है। यह मेरी रचना-प्रक्रिया ही है। मैं नाटक को मंचपर संपूर्ण रूप से प्रत्यक्ष प्रसतुत कर इसकी रचना-प्रक्रिया को पूरी करता हूं। मैं इसमें सर्वत्र हूं, और कही भी नहीं हूँ। यही मेरी सीमा है, और यही मेरा सामर्थ्य है। इसीलिये मैं अपने प्रस्तुतीकरण के सीमित अनुभवों को आपके सामने नहीं रखना चाहता। "[54]

मिस्टर अभिमन्यु के निर्देशक वीरेन्द्र नारायणजी कहते हैं -

" मेरे लिये तो इस नाटक का यही कटु सत्य ही सबसे बड़ा आकर्षण था, जिस कारण मैंने इसका निर्देशन अपने हाथ में लिया। मेरे लिये तो यही धरातल असली धरातल था जिस कारण पत्नी की गोद में लिटाकर पति के मुंह से कहलाया - यही नरक है। मेरे लिये तो यही नाटक था जिसमें विश्वास और मूल्य टूटते और बनते है। मुझे संतोष और गर्व है कि मेरे पात्रों मैं इसे समझा। मेरे दर्शकों पर भी इसका असर अच्छा हुआ। "[55]

इसप्रकार निर्देशक का कथन दृष्टव्य है।

दर्शकीय / पाठकीय संवेदना :

भारतीय आचार्यों ने नाटक को दृश्यकाव्य कहा है। दृश्यकाव्य होने से नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया है। रंगमंच पर प्रस्तुत किये नाटक को देखने के लिये दर्शक आवश्य ही देखते हैं। दर्शक चेतनायुक्त होने से जो कुछ देखा गया उसके सन्दर्भ में विचार भी प्रस्तुत किये जाते हैं। इसे ही दर्शकीय संवेदना कहा जाता है। दर्शकीय संवेदना दर्शक के मन:स्थिति पर निर्भर करती है। नाटक पाठ्य भी है और दर्शकीय भी है। पाठ्य की अपेक्षा इसका दर्शकीय रूप अधिक महत्वपूर्ण होता है। नाटक और दर्शक के परस्पर संबंध को डॉ. चन्दूलाल दुबे ने अच्छी तरह से व्यक्त किया है। उनका कथन है कि " नाटक और दर्शक अन्योन्याश्रित है। नाटक देखने के लिये दर्शक आते हैं। दर्शकों के लिये नाटक खेले जाते हैं। दर्शकों के अभाव में नाटक का प्रदर्शक असम्भव है। नाटक दर्शकों पर अपना प्रभाव डालता है तो दर्शक भी नाटक को प्रभावित करते हैं। "[56]

दर्शकों के बिना नाटक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। तो नाटक प्रस्तुत नहीं किया तो दर्शक कुछ भी नहीं देख सकते, इसप्रकार दोनो परस्पर पूरक माने गए हैं।

सूर्यमुख :

' सूर्यमुख ' नाटक की दर्शकीय / पाठकीय संवेदना देखने से पहले नाटकीय रचनाकार के मन का संघर्ष अपनी अधिकाधिक विभीषिका में साकार होकर उसके अन्वीति को सूक्ष्म संकेतोद्वारा व्यंजनामात्र कराई गयी है। डॉ. एल्.एम्.शर्माजी लिखते हैं -

" इस नाटक का संवेदन वस्तुपरक एवं बहुआयामी होने के कारण जीवन संदर्भों के रहस्योद्‌घाटन में अत्याधिक सजग है। दर्शक के समक्ष वह एक सम के रूप में उपस्थित होकर भी समभंग का रूप ग्रहण करता है, जिससे गति एवं अगति एक ही बिंदु पर अन्विति रूप में आ उपस्थित होती है। "[57] डॉ. लाल ने परंपरा को तोड़ा है नहीं बल्कि नया आदर्श या मिथकीय रूप प्रस्तुत करके नाटक नये सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। जो सफल सिद्ध हुआ है। गोविन्द चातक जी का कथन भी दृष्टव्य है -

" उनका मिथकीय नाटक ' सूर्यमुख ' मानवीय भावनाओं के आन्तरिक काव्य को रचने में बहुत समर्थ नहीं दिखाई देता और न उसमें भाषा अथवा संवाद शैली के स्तरपर कोई वैशिष्ट्य ही प्रतीत होता है। उसमें वे खड़ी बोली के साथ ब्रज और पूर्वी हिन्दी का प्रयोग कर पात्रों के वर्गीय चरित्र को अवश्य व्यक्त करते है, किंतु नाटक समग्र संवेदना और मुख्य पात्रों और स्थितियों के संयोजन की दृष्टि से कोई भाषिक प्रभाव नहीं छोड़ता। "[58]

कुछ भी हो सूर्यमुख नाटक पढ़ते समय उस नाटक का अलग व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। नाटक की पकड भले ही गोलाकार हो परंतु पात्रों के प्रस्तुती के समय नाटककार पूर्णरूप से जागृत दिखाई देते हैं।

यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध :

दोनों लघुनाटक बहुत ही प्रभावपूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत किये गये हैं। आधुनिकता को यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है। जयदेव तनेजा जी लिखते हैं -

" नये रूप में शायद डॉ. लाल को यह संतोष भले ही हो कि सत्यप्रिय के रूप में उन्होंने जयप्रकाश नारायण को प्रस्तुत कर दिया हो। परंतु इस पुनरावृत्ति के नाटक अवश्य ही शिथिल हुआ है उसकी

एकाग्रता भंग हुई और मूलतः एक अपेक्षाकृत अच्छा लघुनाटक लाल के अन्य खिचडी एवं शिथिल नाटकों की भीड में शामिल हो गया है। "[59] उपर्युक्त कथन से डॉ. लाल ने इन नाटकों के बारे में बड़ी जल्दी की होगी ऐसा लगता है। परंतु असल में दोनो नाटक पूर्ण ही दृष्टिगोचर होते हैं। जयदेवजी फिर लिखते हैं -

" रंगमंचीय काव्य के स्तर पर जीवन की सार्थकता की तलाश के ये दोनों नाटक अपने कलेवर के कारण डॉ. लाल के अन्य बड़े नाटकों की अपेक्षा अधिक सघन और अन्विति की दृष्टि से अधिक प्रभावपूर्ण हे। "[60] एक ही लेखक के दो मत दो विभिन्न पुस्तकों में देखने को मिलते है यह आश्चर्य की बात है। दयाशंकर शुक्ल जी का कथन भी दृष्टव्य है -

" नाटक के शब्दों में प्रयोग कम से कम है, वे कार्य की दृश्यात्मकता से पोषित है। कार्य ही यहा नाटक को गति देता है और इससे एक प्रकार की आन्तरिक उर्जा का जन्म होता है। यही इस नाटक को रंगकाव्य की संज्ञा से पोषित करती है। .... नाटक की यह कार्यक्षमता जितनी सहज है उतनी ही कठिनाई से दर्शक तक सम्प्रेक्ष्य होती है। यही इस नाटक का वैशिष्ट्य है। इसीलिये अपनी सहजता में नाटक की आन्तरिक गति और लय नहीं टूटे - इसके लिये यह संवेदनशील निर्देशक की तलाश चाहती है। "[61]

यक्षप्रश्न के बारे में दर्शकीय संवेदना प्रस्तुत करने में समीक्षकों के भिन्न मत दिखाई पड़ते हैं। जैसे देवेश ठाकूर के शब्दों में -

" मंचन की सारी संभावनाओं के बावजूद दृश्य रचना के रूप में संप्रेषण का इनमें नितांत अभाव है। सूक्ष्म प्रतोकात्मकता तथा बोझिल दर्शकीय संवादों के कारण इन कृतियों का कथ्य दर्शन के लिये असंप्रेषित रह जाना है। "[62] उसके विपरीत डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र जी लिखते हैं -

" यह नाटक व्यावसायिक रंगमंच के लिये प्रबुद्ध दर्शकों के लिये लिखा गया किंतु पौराणिक आधार होने के कारण कथा, पुराण, रामलीला, रासलीला और सिनेमा का दर्शक भी इसका आस्वाद ले सकता है। .... मिथक की नूतन व्याख्या प्रबुद्ध दर्शकों के लिये होती है ..... समान्य दर्शक उसे समझते-समझते ही समझेंगे। "[63] दर्शकों के अभिमत से तो नाटक अवश्य ही उच्च कोटि का मालूम पड़ता है समान्य दर्शक इससे असंप्रेषित ही रहेगा क्योंकि नाटक के कथ्य की समझदारी असामान्य है।

कलंकी :

डॉ. लाल का नाटक ' कलंकी ' एक काल्पनिक मिथक है। जिसके कुछ पात्र अमानवीय है। नरनारायण राय इस नाटक के बारे में लिखते हैं -

" डॉ. लाल का नाटककार पिछली परंपरा को तोड़कर हिन्दी नाटक और रंगमंच को कुछ अनुभव देना चाहता था। और इसके लिये कीमत आदा करने की जोखीम उठाकर उन्होंने कलंकी के रंगमंच की स्थापना की। रंगमंच शतवार्षिकी समारोह (1968) की दूसरी सुबह (1969) शैली शिल्प और कथा की दृष्टि से एक अभिनव रंग-प्रयोग वस्तुतः चौकोनवाला साबित हुआ। अब तक नाटक उन अनुभवों की अभिव्यक्ति से अछुत रहें - जिसे पहली बार नाट्यानुभूति के रूप में डॉ. लाल ने अनुभव और अभिव्यक्ति किया। ' कलंकी ' की अवधारणा में। "[64] डॉ. आज्ञात का कथन है - ' इसमें लोककथा, प्रतीक, मिथक, संगीत और दृश्य-बिंब का अच्छा समावेश हुआ है। ध्वनि (मंत्रो और बीजाक्षरों के रूप में) लाल-काले रंगो तथा रंगदीपन के माध्यम से नाटक की त्रासदी तथा भयाकुल वातावरण को उभारा गया है। ' सूर्यमुख ' की अपेक्षा ' कलंकी ' एक अधिक सशक्त मिथकीय प्रयोग बन पड़ा है। "[65] जयदेव तनेजा लिखते हैं -

" 1968 में प्रकाशित इस नाटक का पहला प्रस्तुतीकरण ' संवाद ' द्वारा स्वयं डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के निर्देशन में 11 और 12 को मई 1968 को दिल्ली के ऐफॅक्स प्रेक्षागृह में हुआ था। इस प्रस्तुती में हेरूप की केंद्रिय भूमिका हिंदी के अन्य चर्चित नाटककार दयाप्रकाश सिन्हा ने सफलता पूर्वक निभायी। अवधूत के रूप में राजेंद्र वर्मा, तांत्रिक के रूप में गोपाल माथुर तथा तारा के रूप में संजय चहल ने भी अपनी अपनी भूमिकाओं से भरपूर न्याय करने की कोशिश की। संगीत एवं प्रकाश-व्यवस्था भी प्रभावशाली थी, किंतु प्रस्तुती का समय प्रभाव विचारोत्तेजक न होकर नाटककार-निर्देशक की इच्छा को विपरित चमत्कारीक और रहस्य-रोमांचपूर्ण होकर रह गया।"[66] विभिन्न आलोचकों ने अपने विभिन्न मत प्रस्तुत करके नाटक के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। एक जगह पर तनेजा लिखते हैं - " अभितरन वृत्ताकार, गतियोंजातक अभिनय या नाटक में नाटक की रंगभूमि, विविध दृश्य-स्थलों की सहज स्थिति, समानाकारक संवादों का कलात्मक सहगुंफन, गतियों और वर्तालाप भी लयात्मकता, प्रवेश और प्रस्थान में तीव्र आक्रमकता, गीतों का नाटकीय उपयोग, बिंबात्मक एवं काव्यात्मक भाषा जैसी अनेक विशेषताएँ हैं, जो कलंकी के रंगमंच को

विशिष्टता प्रदान करती है। "[67]

मिस्टर अभिमन्यु :

बिलकूल आज के परिवेश में ठीक तरह से बैठनेवाला नाटक मिस्टर अभिमन्यु है। मिस्टर अभिमन्यु के नाटक की भूमिका में श्रीकांत वर्माजी लिखते हैं -

" मिस्टर अभिमन्यु के माध्यम से उठाया गया प्रश्न समसामयिक बहुत से नाटकों की बुनियाद से ज्यादा संगत और सार्थक है। वह बहुत से लोगों का शायद हममे से प्रत्येक का प्रश्न हो सकता है। क्या हम भी किसी ऐसे चक्रव्यूह में नही घिरे हुए है, जिससे बाहर निकलने की पर्याप्त इच्छा और संकल्प हमारे पास नही है। "[68] वैसे देखा जाय तो नाटक सभी दर्शकों को समान रूप से प्रस्तुत होता है, परंतु नाटक पढ़ने के बाद देखने के बाद प्रत्येक दर्शक या पाठक की प्रतिक्रिया अलग-अलग रहती है। नरनारायण राय जी लिखते हैं -

" मिस्टर अभिमन्यु डॉ. लाल का एक मिथकीय प्रयोग है। यह अभिमन्यु महाभारत का नहीं केवल ' भारत ' का और आजादी के बाद के भारत का और अपने विशिष्ठ चरित्र बिंदुओं को छोड़कर लगभग वही सारी यंत्रणाएँ भोगता है, जो महाभारत में अभिमन्यु को भोगना पड़ा था। "[69] डॉ. लाल का यह नाटक सत्य ही पुराणाभासित है परंतु वास्तविक चित्र उभारकर यथार्थता प्रस्तुत की है। आज के युग का प्रत्येक व्यक्ति कहीं न कहीं आवश्य मजबूर हुआ है।

एक सत्य हरिश्चंद्र :

डॉ. लाल का नाटक ' एक सत्य हरिश्चंद्र ' पुराणाभासित है। नाटक पढ़ने के उपरान्त तत्कालिक गांव का यथार्थ चित्रण ही मालूम पड़ता है। गांव के लोग छुआछुत को माननेवाले होते हैं। गांव का मुखियाँ पूरे गांव को अपने हुकुमत पर चलाता है। भारत का दलित समाज का यह यथार्थ चित्रण ही है। नरनारायण राय लिखते हैं -

" हरिश्चंद्र की कथा का दुहरा प्रयोग हुआ है। एक मूल नाटकीय योजना में और दूसरा नाटक के भीतर होनेवाले नाटकीय योजना में। शिल्प की दृष्टी से यह गढ़ी हुई रचना सिद्ध होती है - हरिश्चंद्र और लौका - कहां हरिश्चंद्र और कहां लौका होते हैं, यह स्पष्ट करना कठिन हो जाता है। दोनों ही कथ्य और दृश्य के प्रतीक बनकर एकाकार हो उठते हैं कथ्य का दृष्यत्व दृश्य का कथ्य। एक प्राचीन कथा को आधुनिक संदर्भ में जोड़कर संपूर्ण नाटक के दृश्यत्व को अर्थ की दुर्लभ व्यंजनाएँ प्रस्तुत की गयी है। "[70]

उन्होंने ठीक ही कहा है। नाटक पढ़ते समय या देखते समय सत्यासत्य का अभास है या समक्ष है इसका निर्णय कर पाना कठिण बात हो जाती है। यह नाटक अपने विचार एवं दर्शन के आयाम पर अप्रतिम कृती साबित हो गयी है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है ... कभी कभी पाठकीय या दर्शकीय संवेदनाओं में अपने-अपने दृष्टिकोण के कारण अंतर भी परिलक्षित होता है। लेकिन इतना सही है कि नाटक मंचीय अवश्य होना चाहिये और उसे पढ़ने पर या देखने पर पढ़ने वाले या देखने वाले के कुछ न कुछ प्रतिक्रिया अवश्य दिखाई पड़ती है। जो नाट्य उसकी एक विशेष उपलब्धि ही कही जा सकती है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के मिथक नाटक इस दृष्टि से अपनी मौलिकता के ही संकेत देते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि -

1) डॉ. लाल स्वयं रंगमंच से जुड़े रहे है, और इसी कारण उनके नाटक रंगमंचीय आयामों से परिपूर्ण है।

2) आमतौर पर डॉ. लाल के नाटकों के दृश्यबंध, वस्तुविन्यास, पात्रों के क्रिया-व्यापार और आधुनिक जीवन बोध के अनुकूल है।

3) डॉ. लाल के मिथक नाटकों के दृश्यबंध ऐतिहासिक, पौराणिक या तंत्रकालीन वातावरण का आभास निर्माण करते हैं।

4) डॉ. लाल के मिथक नाटक - यक्षप्रश्न, उत्तरयुद्ध, मिस्टर अभिमन्यु, एक सत्य हरिश्चंद्र - के दृश्यबंध ऐतिहासिक या पौराणिक न होकर वे आधुनिक जीवन सन्दर्भ से जुड़े हुए है और आज के समाज की व्याख्या करते हैं।

5) डॉ. लाल के सभी मिथक नाटक मंचपर खेले गए हैं। और उन सब ने यह सिद्ध किया है कि उनके नाटक अभिनेय ही हैं।

6) डॉ. लाल ने पात्रों के क्रिया-व्यापार, उनकी मानसिक दशाएँ, उनके अंतर्द्वंद्व आदि के द्वारा पात्रों की सृष्टि इस तरह की है कि वे रंगमंच की दृष्टि से अपना प्रभाव दर्शकों पर डालने में सक्षम है।

7) डॉ. लाल के मिथक नाटकों में रंगदीपन या प्रकाश योजना और ध्वनि संकेतों का प्रयोग पात्रों की मानसिक स्थिति तनाव संघर्ष तथा प्रासंगिक रूप में नाट्यानुकूल हुए हैं।

8) डॉ. लाल की नाट्यभाषा और संवादयोजना पात्रानुकूल, भावानुकूल और घटनानुकूल है, तथापि वह भाषिक प्रयोग की दृष्टि से अधिक प्रभावी है।

9) डॉ. लाल के कुछ मिथक नाटकों की भाषा और संवादों के बारे में कतिपय आलोचकों के मतों में भिन्नता दिखाई देती है, जो उनके विभिन्न दृष्टिकोणों का द्योतक है।

10) नाटककार द्वारा दिये गये रंगसंकेत निर्देशक अभिनेता और अन्य रंगकर्मियों के लिए निःसंदेह सहाय्यक है, तथा नाटककार के रंगमंचीय ज्ञान और अनुभव के परिचायक है।

11) नाटक पढ़ने पर तथा देखने पर पाठकों, दर्शकों, समीक्षकों, निर्देशकों आदि ने अपनी जो प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की है उनसे डॉ. लाल के मिथक नाटकों की मौलिकता दृष्टिगोचर होती है।

12) इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक हिन्दी का रंगमंच उजागर करने में और मंचीय उपस्थापनाओं को नयी दिशा देने में डॉ. लाल के मिथक नाटकों का योगदान सर्वोपरि है।

अध्याय : 5

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1) रंगमंच और नाटक की भूमिका - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 19, प्र.संस्क. 1965

2) सूर्यमुख - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 6, प्र.संस्क. 1977

3) कलंकी - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 8, प्र.संस्क. 1969

4) मिस्टर अभिमन्यु - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. भूमिका, प्र.संस्क. 1980

5) सूर्यमुख - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 23, प्र.संस्क. 1977.

6) रंगमंच और नाटक की भूमिका - डॉ लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 67, प्र.संस्क. 1965

7) रंगभूमि : भारतीय नाट्य सौंदर्य - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 98-99, प्र.संस्क. 1989

8) रंगमंच : कला और दृष्टि - गोविंद चातक - पृ. 39, प्र.संस्क. 1976

9) सूर्यमुख - लक्ष्मीनारायण लाल,पृ. 31, प्र.संस्क. 1977

10) नरसिंह कथा - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 167, प्र.संस्क. 1975

11) कलंकी, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 56, प्र.संस्क. 1969

12) मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - रमेश गौतम, पृ. 92-93, प्र.संस्क. 1989

13) कलंकी, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 61, प्र.संस्क. 1969

14) वही, पृ. 60

15) वही, पृ. 1

16) वही, पृ. 35

17) मिस्टर अभिमन्यु - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 47, प्र.संस्क. 1980

18) सूर्यमुख - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 19, प्र.संस्क. 1977

19) यक्षप्रश्न - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 42, प्र.संस्क. 1976

20) सूर्यमुख - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 41, प्र.संस्क. 1977

21) वही, पृ. 11

22) आधुनिक हिंदी नाटक - भाषिक और संवादीय रचना - गोविंद चातक, पृ. 161, प्र.संस्क. 1982

23) यक्षप्रश्न - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 36, प्र.संस्क. 1976

24) वहीं, पृ. 37

25) वही, पृ. 79

26) आधुनिक हिन्दी नाटक, भाषिक और संवादीय रचना - गोविंद चातक, पृ. 155, प्र.संस्क. 1982

27) नरसिंह कथा - लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. 51-52, प्र.संस्क. 1975.

28) वहीं, पृ. 164

29) कलंकी - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 38-39, प्र.संस्क. 1969

30) आधुनिक हिंदी नाटक, भाषिक और संवादीय रचना - गोविंद चातक, पृ. 153, प्र.संस्क. 1982

31) वहीं, पृ. 161

32) कलंकी - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 38-39, प्र.संस्क. 1969.

33) वही, पृ. 51

34) वहीं, पृ. 5

35) वहीं, पृ. 53-54

36) आधुनिक हिंदी नाटक : भाषिक और संवादीय सौरचना - गोविंद चातक, पृ. 153, प्र.संस्क. 1982

37) मिस्टर अभिमन्यु - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 54, प्र.संस्क. 1980

38) वहीं, पृ. 71

39) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, पृ. 116, प्र.संस्क. 1980

40) आधुनिक हिंदी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना - गोविंद चातक, पृ. 151, प्र.संस्क. 1982

41) एक सत्य हरिश्चंद्र - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 19, प्र.संस्क. 1976

42) वही, पृ. 22-23

43) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, पृ. 173, प्र.संस्क. 1980

44) आधुनिक हिंदी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना - गोविंद चातक, पृ. 150-151, प्र.संस्क. 1982

45) वहीं, पृ. 134

46) सूर्यमुख, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.10, प्र.संस्क. 1977

47) यक्षप्रश्न, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 9, प्र.संस्क. 1976

48) कलंकी - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 8, प्र.संस्क. 1969.

49) मिस्टर अभिमन्यु, लक्ष्मीनारायण लाल, भूमिका, प्र.संस्क. 1980

50) एक सत्य हरिश्चंद्र, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 7, प्र.संस्क. 1976

51) सूर्यमुख, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 101, प्र.संस्क. 1977

52) यक्षप्रश्न, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 10, प्र.संस्क. 1976

53) कलंकी - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 64, प्र.संस्क. 1969

54) मिस्टर अभिमन्यु - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 86-87, प्र.संस्क. 1980

55) नाटक और रंगमंच - सम्पा. डॉ. शिवराम माली और डॉ. सुधाकर गोकाककर, पृ. 244, प्र.संस्क. 1979(डॉ. चंदुलाल दुबे का लेख - नाटक और दर्शन)

56) सूर्यमुख - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 12, प्र. संस्क. 1977

57) आधुनिक हिंदी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना - गोविंद चातक, पृ. 151, प्र.संस्क. 1982

58) हिंदी रंगमकर्म, दशा और दिशा - जयदेव तनेजा, पृ. 172- , प्र.संस्क. 1988

59) समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच - जयदेव तनेजा, पृ. 36-37, प्र.संस्क. 1978

60) लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डॉ. दयाशंकर शुक्ल, पृ. 175, प्र.संस्क. 1978

61) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, पृ. 180, प्र.संस्क. 1980

62) वही, पृ. 180

63) आधुनिक हिन्दी नाटक : एक यात्रा दशक - नरनारायण राय, पृ. 21, प्र.संस्क. 1979

64) साठोत्तरी हिंदी नाटक - सम्पा. डॉ. विजयकांत धर दुबे, पृ. 180, प्र.संस्क. 1983 (डॉ. अज्ञात का लेख - साठोत्तरी हिंदी नाटक : रंगयोजना)

65) आज के हिंदी रंगनाटक - जयदेव तनेजा, पृ. 110, प्र.संस्क. 1980

66) वही - पृ. 109

67) मिस्टर अभिमन्यु - लक्ष्मीनारायण लाल - भूमिका, प्र.संस्क. 1980

68) आधुनिक हिंदी नाटक : एक यात्रा दशक - नरनारायण राय, पृ. 68, प्र.संस्क. 1979

69) वही - पृ. 237.